भूमिका

भारत देश का मूल वासी होने का गौरव आदिवासियों को प्राप्त है, इनकी सभ्यता और संस्कृति 'निष्कपट मानवीय मूल्यों' पर आधारित रही है। आदिवासी वर्ग ने हमेंशा बाहरी लोगों को अपने क्षेत्र में अनाधिकार प्रवेश का संगठित होकर विरोध किया। अपने धर्म, संस्कृति, मर्यादा और समाज की रक्षा उन्होंने साहसपूर्वक की। आज के औद्योगिक और घोर पूंजीवादी युग में आदिवासियों पर हो रहे उत्पीड़न की घटनाओं ने बराबर मेरा ध्यान आकृष्ट किया। अखबार की खबरों और पत्र-पत्रिकाओं की सूचनाओं से इतर मैंने बार-बार महसूस किया कि कुछ छूट रहा है, जो बेहद संवेदनशील है और मुझे बेचैन कर रहा था। आजाद भारत का यथार्थ आदिवासी इलाकों के अधिग्रहण पूंजीवादी विकास के बीच प्रतिरोधी संघर्षरत उजड़ते-बसते आदिवासी समाज की गाथा से भरा पड़ा है। आज की चकाचौंध की बहुव्यापी प्रचारात्मकता के बीच बिखरा दर्द, विस्थापन और मानवीय संवेदना को झकझोरने वाला है। अपने एम.फिल. अध्ययन के समय इसी तरह के प्रश्नों को लेकर विमर्श के दौरान मेंरा परिचय विश्वविद्यालय में कथाकार संजीव जी से हुआ और कोयलांचलों में आदिवासी समाज के जनजीवन के उल्लास, संघर्ष को एक रचनाकार की संस्पर्शी संवेदना से जानने का सुअवसर प्राप्त हुआ। संजीव जी के उपन्यासों को पढ़ते हुए आदिवासी समाज के मानवीय मूल्यों विसंगतियों व बाह्य आंतरिक कारणों से पैदा हुए परिवेश को जाननें का अवसर प्राप्त हुआ। उनकी संस्कृति, अस्मिता और सबसे अधिक जीवित रहने की संघर्षधर्मिता मुझे आदिवासी समाज के विद्रोही स्वर को जानने और उसे समकालीन भारतीय यथार्थ को समझने की तरफ बार-बार खींचता रहा। इसी संदर्भ में संजीव जी का उपन्यास 'धार' तथा 'पांव तले की दूब' की रचना

प्रक्रिया व व्यक्ति जीवन संघर्ष की पड़ताल का एक विनम्र प्रयास के रूप में यह अध्ययन प्रस्तुत है।

साहित्य समाज के अंतर्संबंधो की अभिव्यक्ति है। तमाम वर्गों में बंटा भारतीय सामाजिक जीवन का रूप हमें साहित्य में भी दिखाई देता है। सदैव से शोषणकारी सामाजिक, राजनैतिक संस्थाओं ने न सिर्फ शोषित वर्गों को उपेक्षित रखा बल्कि उन्हें ज्ञान एवं कला के उत्पादन से सर्वथा वंचित कर दिया। इस तरह साहित्य कला के क्षेत्र में भी शासक वर्गों की विचारधाराएं प्रमुखता से स्थापित रही और कला के क्षेत्र में कलाकारों का वर्गीय चरित्र भी बहुलता के साथ शासक-शोषक वर्गों का ही रहा है। आधुनिक पूंजीवादी समाज के उदय के साथ जैसे-जैसे शोषण का दमनात्मक रूप तेज होता गया वैसे-वैसे समाज में दमित वर्गों ने अपने प्रतिरोध के स्वर बुलंद किये और समाज ने संघर्ष के साथ ज्ञानात्मक अनुशासन एवं कलात्मक अभिव्यक्ति के क्षेत्र में भी किसान मजदूर आदिवासी तथा सदियों से स्त्री के स्वर ने भी अपना मुखर स्थान प्राप्त किया। आज समाज के इस हाशिए की आबादी और उत्पादक वर्ग की अवाज अपनी जगह बना रही है। इसके बावजूद आज भी कला और साहित्य में व्यापक सामाजिक यथार्थ की द्वंद्वात्मक अभिव्यक्ति का एक व्यापक क्षेत्र अभी भी अछूता है।

यह महत्वपूर्ण है कि आधुनिक पूंजीवादी समाज के गर्भ से पैदा साहित्यिक विधा उपन्यास एक व्यापक सामाजिक यथार्थ के चित्रण में अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है। यह जीवन के विशद कलात्मक चित्रण को अपने में समेंटे हुए है। आजादी के बाद उपन्यासों की विषयवस्तु में व्यापक परिवर्तन आया। ज्ञानात्मक विमर्शों के विभिन्न पहलुओं के साथ ही बदलते परिवेश में खेती से जुड़ी आबादी का मजदूरों में

रूपांतरण, स्त्री अस्मिता और दलित एवं आदिवासी अस्मिता का राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आयाम उपन्यास के विषय वस्तु बने। यद्यपि अभी भी इन विषयों के सटीक व्यापक भविष्योन्मुखी, द्वंद्वात्मक यथार्थवादी लेखन की अल्पता है फिर भी इस क्षेत्र में उपन्यासों नें अपनी-अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। आदिवासी संघर्ष की एक व्यापक एवं सुदीर्घ परंपरा के बावजूद साहित्य में इसकी अभिव्यक्ति बहुत देर से हुई। औपनिवेशिक भारत में एवं 1947 की राजनैतिक आजादी के बाद भी आदिवासी समाज विभिन्न तरह के शोषण और दमन का शिकार रहा तथा समाज विकास की मुख्यधारा से दूर रहा। भारतीय शासक वर्गों की मंशा पर आज के भारत के आदिवासी एवं दमित हाशिए के समाज एक प्रश्नचिन्ह छोड़ते है। इसी आदिवासी समाज की संघर्ष गाथा को समेंटे लेखक संजीव का उपन्यास 'धार' व 'पांव तले की दूब' हिंदी साहित्य में आदिवासी स्वर एवं विमर्श को सवर्था नए रूप में प्रस्तुत करता है। 'धार' उपन्यास की कथाभूमि एक सच्ची घटना पर आधारित है, जो सन 1979-1982 के बीच बंगाल में संथाल परगना के देवघर सब-डिवीजन के चित्रा कोयला क्षेत्र के सहारजोड़ी नामक स्थान पर घटी थी, जहाँ जनमुक्ति मोर्चा नामक एक क्षेत्रिय संगठन के नेतृत्व में एक कोयला खदान शुरू की गई थी। इस जन खादान का प्रबंधन और संचालन मजदूरों द्वारा किया जाता था। सत्ता शासन और क्षेत्रिय खदान माफियाओं द्वारा उस जन खदान को नष्ट कर दिया गया दरअसल सामूहिकता पर आधारित जनखदान मजदूर एकजुटता और पहलकदमी मुनाफा आधारित समाज के मार्ग में बाधक थी। मजदूरों की सृजनशीलता व अपनी मानवीय गरिमा के लिए संघर्षरत आदिवासी समाज के इस उद्यम को दमन व अत्याचार द्वारा नेस्तनाबूत कर दिया गया। 'पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स' (पी .यू.डी.आर .) द्वारा

इस घटना पर प्रकाशित जांच रिपोर्ट 1982 में आयी जो रचना के मूल कारणों में से एक है। लेखक ने रचना से पूर्व उस संपूर्ण इलाके में जाकर यथार्थ का सर्वेक्षण एवं रचनात्मक प्रकिया को आत्मसात करके इस उपन्यास को मानवीय संवेदना के साथ समाज वैज्ञानिक शोध तक पहुँचा दिया।

दूसरा विवेच्य उपन्यास 'पांव तले की दूब' है। यह उपन्यास सामाजिक कार्यकर्ता के द्वंद्व पर आधारित है जो आदिवासी समाज की विसंगतियों को खत्म कर उन्हें समाज की मुख्यधारा में जोड़ना चाहता है। एक उच्चतर मानवीयता की प्रतिष्ठा करना चाहता है और आदिवासी संघर्ष तथा प्रतिरोध की सर्जना करना चाहता है। इस उपन्यास की कथाभूमि झारखंड के छोटानागपुर के डोकरी अंचल का क्षेत्र है, जहां एन.टी.पी.सी.(नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन) के लिए सरकार आदिवासियों की जमीन का अधिग्रहण करती है और वहाँ के आदिवासियों को जबरन विस्थापित करती है। विस्थापित आदिवासियों की लड़ाई एवं नेतृत्व एक गैर आदिवासी सुदीप्त नामक एक सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा किया जाता है।

इस उपन्यास में आदिवासी जनजीवन में व्याप्त गरीबी, शासन द्वारा छले जाने से पैदा हुए आक्रोश को गहरी अभिव्यक्ति मिली है। यह कथा क्रांतिकारी सामाजिक कार्यकर्ता एवं जनकवि गोरख पांडेय की चिंताओं और उनके जीवन से उपन्यास के मुख्य पात्र सुदीप्त की कुछ अंशों तक साम्यता स्थापित करता है। जनकवि सुदीप्त आदिवासियों के हक और अधिकार के संघर्षों को व्यापक बनाना चाहता है। उसे आशंका रहती है कि झारखंड बन जाने के बावजूद आम लोगों की समस्याएं ज्यों त्यों की बनी रहेगी।

प्रस्तुत लघु शोघ प्रबंध को पांच अध्यायों में विभाजित किया गया है-

पहले अध्याय में तीन खंड है। प्रथम खंड में कथाकार संजीव और उनके समय को रेखांकित किया गया है। दूसरे खंड में संजीव की कथायात्रा के प्रारंभिक दौर से लेकर अब तक की कथायात्रा का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। तीसरे खंड में संजीव की कथा दृष्टि का विवेचन एवं विश्लेषण किया गया है।

दूसरे अध्याय में कोयलांचलों का भौगोलिक एवं ऐतिहासिक परिचय दिया गया है। वहाँ के क्षेत्रों, संचित भंडारों, क्षेत्र की सीमाओं, उद्योग धंधों के साथ-साथ उन क्षेत्रों के ऐतिहासिकता की पड़ताल की गई है।

तीसरे अध्याय को दो खंडो में विभक्त किया गया है जिसमें 'धार' और 'पांव तले की दूब' उपन्यास के बारे में गहन चिंतन मनन किया गया है। पहले खंड में आदिवासी, आदिवासी संस्कृति एवं उस पर पड़ने वाले बाह्य प्रभावों के बारे में बताया गया है। किस तरह आदिवासी संस्कृति अपने मानवीय मूल्यों को विघटित कर बाह्य संस्कृतियों का अनुकरण कर रही है और बाहरी संस्कृतियां किस तरह से आदिवासी संस्कृतियों को नीचा दिखाकर अपने को श्रेष्ठ घोषित कर रही है। इन सब तथ्यों को अध्ययन में सम्मिलित किया गया है।

दूसरे खंड में आदिवासियों की समस्याओं, जल,जंगल, जमीन एवं विस्थापन की समस्या को विस्तार से व्याख्यायित किया गया है। सत्ता और पूंजीवादी तंत्र के आदिवासियों के साथ किए गए सलूक को भी विस्तार से बताया गया है।

चौथे अध्याय में तीन खंड हैं। प्रथम खंड में आदिवासी विद्रोह के विविध स्वरूपों को दिखाया गया है साथ ही उनके ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की पड़ताल की गई है।

दूसरे खंड में आदिवासी समाज में स्त्रियों की भूमिका को बताया गया है। स्त्रियों के श्रम संगठन एवं सहभागिता को विश्लेषित किया गया है और उपन्यास में स्त्रियों की क्या भूमिका है। इस पर विचार विमर्श किया गया है।

तीसरे खण्ड में आदिवासी प्रतिरोध और उनके साथ सत्ता पक्ष की भूमिका की गहरी पड़ताल की गयी हैं। साथ ही साथ सत्ता किस तरह से आदिवासियों के प्रतिरोध का दमन करती है इसका भी विवेचन विश्लेषण किया गया है।

पांचवे अध्याय में उपन्यास के शिल्प पक्ष का विश्लेषण किया गया है। साथ ही उपन्यासकार की भाषा, शब्द योजना, बिम्ब, लोकोक्तियों, लोकगीतों एवं नये शाब्दिक वाक्य विन्यास की विस्तार से चर्चा की गयी हैं। उपन्यास की संवाद योजना के माध्यम से तत्कालीन समाज के साथ-साथ वहाँ के परिवेश व भाषा का चित्रण किया गया है।

प्रस्तुत शोध आजाद भारत में आदिवासी संघर्ष की सच्ची घटनाओं के कथानक पर रचे विवेच्य दो उपन्यासों के संदर्भ में, इनकी रचना प्रक्रियाओं की ऐतिहासिक पड़ताल करता है। समकालीन भारतीय राज्य और हाशिए के समाज के अंतर्संबंधों व राज्य के विकास माडल और आदिवासी संघर्ष, आदिवासी समाज के आंतरिक द्वन्द व वाह्य हस्तक्षेप से उत्पन्न जटिलता की अभिव्यक्ति के साथ आदिवासी विमर्श के बहुआयामी पक्षों को उदघाटित, विश्लेषित एवं व्याख्यायित करता है। रचना का समय संदर्भ व वर्तमान के आदिवासी जीवन विमर्श को तन्तुबद्ध तरीके से दिखाया जा सके यही शोध का उद्देश्य रहा है।

संजीव और उनका समय

समकालीन उपन्यासकारों में संजीव का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म 6 जुलाई 1947 में बांगर कला सुल्तानपुर (उत्तरप्रदेश) में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा गांव में ही संपन्न हुई। गांव से ही इनके काका इन्हें पश्चिम बंगाल के गांवनुमा औद्योगिक क्षेत्र कुलटी में पढ़ाने के लिए ले गये। यहीं पर इनका पठन-पाठन शुरू हुआ। साइंस में विशेष रुचि के होने कारण इन्होंने बी.एस.सी. और ए.आई.सी. की डिग्रियां प्राप्त की। संजीव का जीवन संघर्षों में बीता है। उनका संघर्ष जितना अपने बाह्य समाज से रहा उतना ही अपने आंतरिक परिवेश व परिवार से रहा है। बचपन अत्यंत कठिन परिस्थितियों में बीता।

तीन साल की उम्र में इन्हें दुलारने और बहलाने वाले मंझले भैया का सन् 1994 में दिल के दौरे से मृत्यु हो गयी। मंझले भैया की मृत्यु से आहत संजीव की माता भी संभल न पाई और उनकी भी मृत्यु हो गई। इनके पिता की भी इसी सदमें के कारण मृत्यु हुई थी, इतना ही नहीं इन्हें पढ़ाने वाले अनपढ़ काका अंधे, अपाहिज मुफलित होकर कुएं में गिरकर मरे और इनके बड़े भैया की हार्ट अटैक के कारण मृत्यु हुई, इस प्रकार इनके जीवन में हुए हादसों ने इन्हें बार -बार तोड़ने का ही कार्य किया। नियति ने बार बार उनसे छल किया। संजीव सारे दर्दों को छुपाये हुए भी जिन्दगी के संघर्ष में हमेंशा आगे बढ़ते रहे।

संजीव का समय बड़े राजनीतिक बदलाव का समय था औपनिवेशिक सत्ता से मुक्त हुई जनता की भारतीय शासन से बड़ी आशा और आकांक्षा थी, लेकिन जल्द ही उनका यह स्वप्न टूटा। आम जनता के जीवन में हर तरफ बेबसी और लाचारी थी। सामंती शोषण अब भी बरकरार था गोरे अंग्रेज चले गए थे काले अंग्रेज शासन कर

रहे थे। गांव में अब भी उच्च वर्ग का वर्चस्व बना हुआ था और इसी प्रकार बंगाल के औद्योगिक प्रतिष्ठान भी दमन और शोषण का प्रतीक बने हुए थे। निम्न वर्ग के व्यक्ति गांव में न तो उनके सामने खाट पर बैठ सकते और न ही सिर उठाकर चल सकते थे। देश को स्वाधीन हुए चार-पांच साल बीत चुके थे। समय व समाज पर एक नयी सत्ता स्थापित हो रही थी। "वे दिन.. दमन और गुलामी की दाढ़ों में कसमसाते और उनसे निकल पाने की छटपटाहट में बीतते वे दिन। वे दिन जब कोइलरियों में कोड़ों की सटकार पर 'सी.आर.ओ.' कैम्प में गिरमिटिया मजूरों से काम कराया जाता है। और बारह चौदह आने की मजूरी मिलती वह भी सब को नही, सूदखोर और रंगदार वह भी छीन लेते बहुतों का।[1]"

परंपरा और विरासत ने जो तंत्र-मंत्र और अंधविश्वासपूर्ण कूपमंडूकता दी थी, जिनकी पट्टी चढ़ाये संजीव का समाज अर्से से कोल्हू के बैल की तरह परिक्रमा करता रहा है। संजीव उसको पूरी तरह से खारिज कर देते हैं। रासलीला, रामलीला व रामायण क्या है? महाभारत क्या है? गीता क्या है? पुराण क्या है? कुरान और बाइबिल क्या है? इतिहास क्या है? सभ्यता क्या है? संस्कृति क्या है? दुनिया और इसकी धर्म परिभाषित शक्तियां क्या है? संजीव इन प्रश्नों से ऊपर उठकर सोचने समझने की दृष्टि रखते हैं।

संजीव का समय कांग्रेसी संस्कृति, उपनिवेशवादी, सामंती, संप्रदायवादी, बाजार और उपभोक्तावादी हठधर्मिता और बौद्धिक ऐय्याशी के चैतन्य का भी काल रहा है। साथ ही इनके खिलाफ धीरे-धीरे प्रतिरोध करने वाली शक्तियों का भी समय रहा है। यह एक तरह का 'टंग आफ वार' है, जो भी सत्ता शासन कर रही है वह आम जनता के लिए दमनकारी और निराश करने वाला है जो भी पार्टी या गठबंधन सत्ता में आ

रहे हैं, उनमें और उनके प्रतिपक्ष में फर्क, सिर्फ उन्नीस और बीस का ही है। वे ही भ्रष्टाचार, गुंडागर्दी और जातिवादी दलाली व्यवस्था के जनक हैं और अपने स्वार्थ के लिए कोई भी पार्टी, कोई भी गठजोड़ बना सकते हैं। उनका प्रभाव सड़क से संसद तक था। लूट, बलात्कार, हत्या, गुंडई कुछ भी करो शर्त इतनी है उसके शेयर हमें भी मिलें सत्ता के शीर्ष से लेकर अंतिम पुरुष तक को घेरती यह अशुभ वृत्ति ही हमारी संस्कृति बनती दिख रही है। "मेंरा समकाल बेरोक-टोक बढ़ती आबादी यौन हिंसा और अराजकता का काल है। मेंरा समकाल उन्मादग्रस्त हुड़दंगियों का काल है- क्रिकेट, परमाणु बम, विस्थापन, बंटवारा, बाबरी मस्जिद ध्वंस, हिन्दू-मुस्लिम, हिन्दू-सिख, हिन्दू-इसाई ही नहीं, हिन्दू-हिन्दू, मुस्लिम-मुस्लिम, सिख-सिख, जाति-उपजाति के शीत और उष्ण युद्ध खूनी दंगे का काल, गणेश प्रतिमा को दूध पिलाती पिलपिलाती भीड़, सती के नाम पर नारी हत्या को गरिमामंडित करना, नारी-शिशु दलित, गरीबों की हत्या का काल रहा है। मेंरा काल विकास मूलक कल्याणकारी योजनाओं, संस्थानों के बनने और दायित्व हीनता और भोग के विवरों में उनके एक-एक करके विसर्जित होने का काल है यह।"[2]

समाज में एक ओर बेरोज़गारों की अक्षौहिणी सेना सजती जा रही है। दूसरी ओर देश की सबसे उर्जावान पीढ़ी की में धार और तेज को मृग-मरीचिका में बदलने के लिए तीर चलाए जा रहे हैं। संजीव का काल इन अशुभ शक्तियों के विरूद्ध सिर उठानेवाली शक्तियों के खिलाफ, संगठित हिंसा का काल है जो बंटवारे से लेकर बेलछी-पिपरा, जहाँनाबाद, आंध्र से लेकर शंकर गुहा नियोगियों की हत्या से आगे तक जाता है। स्पष्टत: इसी रक्त रंजित पथ पर चलते हुए तकनालॉजी की उपलब्धियों का जादू छिड़कता चला आ रहा है संजीव का समय। संजीव अपने समय तथा समाज से

आहत थे। उन्होंने ऐसी कई घटनाओं का उल्लेख किया है जिससे उनका मन इन दबों कुचलों के साथ चिनगारी बनके उभरा, पहली घटना संजीव के गांव की एक हरिजन युवती की है जिसे पूरे गांव के लोग भौजाई मानकर मजाक करते थे, एक दिन उसने एक ठाकुर के वहाँ काम करने से महज इस पर मिनहा इंकार कर दिया कि उन्होंने उसकी मायावती की मीटिंग में जाने पर कटाक्ष किया था। उसका जवाब उसने कड़े शब्दों में दिया-"अब क्यों छरहरा रहा है ठाकुर? जब तुम राजा बनकर जुल्म करते रहे हम पर तब तुम्हे मजा आता रहा। आज हमारी जात की एक मुख्यमंत्री भई तो सहा नहीं जा रहा है तुमसे?"[3] दूसरी घटना रांची की है, शिबू सोरेन सहित कुछ झारखंडी नेता नरसिंहाराव की सरकार बचाने के लिए रिश्वत खाने के आरोप में कैद थे। उसी संदर्भ में संजीव की एक शिक्षित आदिवासी प्रौढ़ा से बातचीत के क्रम में उसने कहा- "उनके लोग पचीस-पचास करोड़ से लेकर चारा घोटाले का नौ सौ करोड़ यहाँ तक कि शेयर घोटाला में पांच-छह हजार का डाका डाल लें। सब हजम हो जायेगा, हमारे लोगों ने हद से हद एक-दो करोड़ लिया होगा और जेल में बंद कर दिए गए। क्या यही है तुम्हारी व्यवस्था, तुम्हारी न्याय?"[4]

संजीव अपने समय की जातिगत व्यवस्था से असंतुष्ट हैं। वे देखते हैं लोहार तो थें, मगर उनके हाथ में लोहे का काम नहीं था, बढ़ई, यादव, कुर्मी, कोइरी, कुम्हार, सोनार, चमार, मल्लाह आदि जातियां भी हैं, मगर इनके जातिगत पेशे उनसे छिन चुके हैं। ऐसा क्या हुआ कि इनकी जाति रह गई आत्मा तक को गला देने वाली घृणा की बौछारें रह गई और उनके धंधे छिन गए, वह भी मुख्य रूप से उन लोगों द्वारा छीने गए जो इन पर घृणा करते थे।

यह ऐसा समय है जिसमें अधिकतर वंचितों को शिक्षित-प्रशिक्षित कर अधिकार के प्रति सचेत करना शुरु कर दिया गया है और सामाजिक संरचना में अपने संख्या बल के चलते कुछ पिछड़ी जातियां, सत्ता और व्यवस्था में अपना स्थान बना रहीं हैं मगर वहाँ भी बड़ी मछली छोटी मछली को खाने से बाज नहीं आ रही है, बाज आ भी नहीं सकती, क्योंकि जब तक भारतीय समाज में जाति का मुद्दा बना रहेगा उन लघु जातियों की फरियाद सुनने वाला कोई नहीं होगा। वहाँ तक कि पिछड़ी जातियों के बहुसंख्यकों के समाज में भी घिनौना ब्राह्मणवाद और कुटिल सामंतवाद बना हुआ है। संजीव इन झूठों से अपनी रचनाओं में बार-बार मुठभेड़ करते हैं और बार-बार लहू-लुहान भी होते हैं।

संजीव का समय विज्ञान और टेक्नोलॉजी की असीमित संभावनाओं को लिए हुए हैं। मगर इस पर पैसे वालों का कब्जा है और यह सारी उपलब्धि उनकी सेवा में हमें वधशाला की ओर ढकेलने में लगती दिख रही है। उनका समय सूचना क्रांति का भी है जो मनुष्य को हर अभिज्ञान से सुसज्जित कर उसे और भी सही, और भी समर्थ मनुष्य बना सकती है मगर इस पर भी बाजारवाद पूरी तरह से हावी है। सूचना-क्रांति वंचितों, गरीबों की मुक्ति के लिए नहीं, पूंजीपतियों और अपराधियों की शक्ति बढ़ाने के काम आ रही है। साहित्य, कला, संस्कृति के अब तक के विकासमान प्रतिमानों के चलते ही संवेदनाएं मनुष्य, मनुष्य और प्रकृति में रागात्मकता बनाए हुए थी, लेकिन आगे इसकी जरूरत नहीं रह जाएगी क्योंकि तब तक ये इंसानी नस्ल को यंत्र में बदल देंगे।

नई पीढ़ी मानसिक विकृतियों, उत्पीड़नों तथा अपराधों की तरफ बढ़ रही है। यह तंत्र दिमाग के दर्द को जांघ की खुजली में तब्दील कर रहा है। यह तंत्र पहले

रोगी बनाता है, फिर रोगी के रोग के निवारण के लिए दवा। यह ऐसा महीन लूटतंत्र है कि जिसकी कोई तुलना नहीं है। मीडिया हमारी मातृभाषा छीनकर अंग्रेजी सिखा रही है। बाजारवाद की भाषा में शिक्षित-प्रशिक्षित करने का काम छोटे से बड़े स्तर पर अंग्रेजी स्कूल कर रहे हैं। ये सभी प्रश्न निश्चित रूप से एक बड़ी और व्यापक लड़ाई की मांग करते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ :

1 संजीव, संजीव की कथा यात्रा, तीसरा पड़ाव पृष्ठ सं. 8

2 वही पृष्ठ सं. 11

3 वही पृष्ठ सं. 11

4 पृष्ठ सं. 11-12

1.2 संजीव की कथा यात्रा

समकालीन कथाकारों में संजीव एक विशिष्ट कथाकार के रूप में चर्चित रहे है उनका लेखन साहित्य जगत में मौलिक दृष्टिकोण और मौलिक चेतना के साथ उद्भूत हुआ है। तथाकथित और पंरपरावादी दृष्टिकोण को त्यागता हुआ संजीव का लेखन जीवन के विविध आयामों से अपना सरोकार स्थापित करता है और समाज के वंचित तबकों, हाशिए के लोगों को मुख्यधारा से जोड़ने का अथक प्रयास करता है। इनकी पहली व्यंग्य रचना 'किस्सा एक बीमा कंपनी की एजेंसी का' सारिका पत्रिका में अप्रैल 1976 में प्रकाशित हुई। तब से लेकर आज तक इनका लेखन अनवरत जारी है। संजीव की कथायात्रा किसी लीक की कथायात्रा नहीं बल्कि जीवन के वर्जित क्षेत्र की

कथा यात्रा है। इस संदर्भ में संजीव कहते हैं कि "मेंरे लेखन से किसी को क्या मिला या क्या मिलेगा, नहीं जानता पर लेखन ने खुद को अतिक्रमित करने में, सोच और समझ के दायरों को विस्तृत कर मुझे पहले से बेहतर इंसान बनाने में जिस प्रकार संचालित किया है उसे मैं मर्म-मर्म में महसूस करता हूं।"[1]

संजीव के लेखन में जीवन की विविधता और हाशिए के समाज का यथार्थ सच दिखाई देता है, संजीव की कथा यात्रा को तीन भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम कथायात्रा के अंतर्गत उनकी कहानियों का महत्वपूर्ण दस्तावेज दिखाई पड़ता है जिसमें रचनाकाल-1975, प्रकाशन वर्ष (1981) मुख्यत: तीस कहानियां शामिल है। इन कहानियों में किस्सा 'एक बीमा कम्पनी की एजेंसी का'(1978-81), बागी, (1976-1981) तीस साल का(1977-1981) सफरनामा, अपराध भूखे रीछ, दास्तान-ए-चमन, प्याज के छिलके, धुआँता आदमी, मुर्दगाह, अंतराल, महामारी, आपरेशन जोनाकी, यह कस्बा जिन्दा कैसे है, तथा चुनौती आदि को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है ।

इस संदर्भ में संजीव कहते हैं कि- "प्रस्तुत कहानियां तीस वर्षो के आजाद भारतीय मानस के कैनवास पर उभरी, आर्थिक, नैतिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक यथार्थ का शिनाख्त है। देश के लाखों दलित, दमित, प्रताड़ित उपेक्षित जनों की जिजीविषा और संघर्ष की यात्रा है"।[2]

संजीव की कथा यात्रा के दूसरे पड़ाव के अन्तगर्त शिनाख्त (प्रकाशन वर्ष 1990), दुनिया की सबसे हसीन औरत (87-90), मक्तल (90-92), नकाब (1995), ब्लैकहोल (95,97), धुन्ध और धुन्ध (90-95,1997), काउंटडाउन (96-97), दुश्मन, सूखी नदी के घाट पर आदि कहानियों का महत्वपूर्ण स्थान है।

जबकि तीसरे पड़ाव के अंतर्गत लिटरेचर, हलफनामा (1977-2000) अवसाद, जीवन के पार (1999-2000), हत्यारे (2001-2007), अविष्कार (03-07), गुफा का आदमी (03-07), डेढ सौ साल की तन्हाई (03-07),बाघ (94-95/2007), गली के मोड़ पर सुना सा कोई दरवाजा (07), गति का पहला सिद्धांत (03-07) तथा दस्तूर (01-07) आदि उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियां है। जबकि बाल कहानियों में भिड़ंत को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

संजीव के उपन्यासों में 'किशनगढ़ के अहेरी', 'सर्कस', 'धार', 'पांव तले की दूब', 'जंगल जहां शुरू होता है', 'सूत्रधार', 'सावधान नीचे आग है', 'आकाश चम्पा' तथा 'रह गई दिशाएं इसी पार' आदि शामिल है। 'रह गई दिशाएं इसी पार' एक वैज्ञानिक व दार्शनिक बहसों चिंताओं का उपन्यास है।

संजीव की कृतियों पर कई फिल्मों का निर्माण किया जा चुका है, और जारी भी है सावधान! नीचे आग है उपन्यास पर काला हीरा नामक टेलीफिल्म का निर्माण हुआ है, जो काफी लोकप्रिय है। 'प्रकाश झा प्रोडक्शन' द्वारा हिमरेखा कहानी पर फिल्म निर्माणाधीन है और श्याम बेनेगल द्वारा निर्देशित फिल्म वेलडन अब्बा, कहानी फुलवा का पुल पर, आधारित है।

संदर्भ सूची :

1- संजीव, संजीव की कथा यात्रा तीसरा पड़ाव, पृष्ठ 9

2- वही पृष्ठ सं.10

1.3 संजीव की कथा दृष्टि

संजीव की रचना दृष्टि लीक छोड़कर चलने वाली है। उनमें सहज भावों या परंपरावादी भावों का नितांत अभाव है। संजीव कहते हैं कि- "कैसे कहें कि कहानी सीप के कीड़े द्वारा मोती रचने जैसा कर्म है, कैसे कहें कि कहानी कुम्हार द्वारा घड़ा या मूर्तियां बनाने जैसा उद्यम है, कैसे कहें कि कहानी किसान द्वारा फसल पैदा करने या गायक जैसा राग साधने जैसा श्रम है। कोई भी सृजन कर्म स्रष्टा की निजी वैयक्तिकता और शेष विश्व और काल के साथ उसकी द्वन्द्वात्मकता का प्रतिफलन है"।[1] कथाकार कहानी क्यों लिखता है, सिर्फ वही और वैसे ही क्यों लिखता है, रचना के उपादानों का कहां कहां से संधान व संश्लेषण करता है, संवर्धन और संशोधन की वे क्रियाएं किस तरह अंजाम पाती है- यह एक नितांत गूढ़ रहस्य है। चेतन व अवचेतन संस्कार से सरोकार और स्वत: स्फूर्तता से दबावों तक फैली हुई बहुआयामी क्रिया का परिणाम है। संजीव नितांत भावों में बहने वाले कथाकार नहीं हैं बल्कि उनकी रचनादृष्टि में वैज्ञानिकता, तथ्यात्मकता के साथ-साथ यथार्थ जीवन को व्यक्त करने वाली एक गहरी दृष्टि और गहरी संवेदना भी है। उनकी रचना दृष्टि एक सहज दृष्टि नहीं है बल्कि एक भोगे हुए व्यक्ति की दृष्टि है, जो अपने ही समाज व समय से लगातार टकराता है, कभी नहीं थकता बल्कि, परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने की लगातार कोशिश करता है।

संदर्भ सूची :

1. संजीव, संजीव की कथा यात्रा का दूसरा पड़ाव पृष्ठ संख्या.5

कोयलांचलों का भौगोलिक और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारत प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है, यहाँ प्रचुर मात्रा में बहुमूल्य खनिज एवं कोयले के भंडार मौजूद हैं। प्राकृतिक संसाधनों के ये भंडार आदिवासियों के पैरों के नीचे है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि जहां-जहां आदिवासी निवास करते हैं लगभग उन्हीं क्षेत्रों में कोयला व अन्य खनिज पदार्थ भारी मात्रा में उपलब्ध है। कोयला ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। इसीलिए कोयला क्षेत्रों में शुरू से ही, सत्ता और औद्योगिक घरानों का हस्तक्षेप बरकरार रहा। भारत में कोयले का क्षेत्र मुख्यत: आदिवासी क्षेत्र है।

भौगोलिक दृष्टि से भारत में कोयलांचल क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। भारत के कोयलांचल क्षेत्रों में झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, आंध्रपदेश, महाराष्ट्र और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। क्षेत्रीय दृष्टिकोण से कोयले के महत्वपूर्ण उत्पादन क्षेत्र इस प्रकार है।

पश्चिम बंगाल का रानीगंज क्षेत्र, झारखंड के धनबाद जिले का झरिया कोयला क्षेत्र ,झारखंड का गिडगिड कोयला क्षेत्र, उड़ीसा का टलचेर कोयला क्षेत्र, महाराष्ट्र का पश्चिमी घाट पहाड़ी क्षेत्र, दामोदर घाटी का गोंडवाना कोयला क्षेत्र, छत्तीसगढ़ का सोना घाटी कोयला क्षेत्र, छत्तीसगढ़ का कनकपुरा कोयला क्षेत्र, छत्तीसगढ़ का कोरबा क्षेत्र, छत्तीसगढ़ का रायगढ़ क्षेत्र, महानदी घाटी का कोयला क्षेत्र, आंध्र प्रदेश का सिंहरौली कोयला क्षेत्र, आंध्र प्रदेश का नेल्लोर कोयला क्षेत्र।

छोटानागपुर पठार परिचय- छोटानागपुर पठारी क्षेत्र, पूर्वी भारत में स्थित एक पठार है। झारखंड राज्य का अधिकतर हिस्सा उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, बिहार व छत्तीसगढ़

के कुछ भाग इस पठार में आते हैं। इसके पूर्व में सिंधु गंगा का मैदान और दक्षिण में महानदी है। इसका कुल क्षेत्रफल 65000 वर्ग किमी है।

प्राचीन काल में राज करने वाले नागवंशी राजाओं के कारण इसका नाम 'नागपुर' दिया गया और छोटा शब्द रांची से कुछ दूरी पर स्थित 'छुटिया' नामक गांव का परिवर्तित रूप है, जिसमें नागवंशियों का एक पुराना दुर्ग मौजूद है। छोटानागपुर की पथरीली परतों के भू- वैज्ञानिक अध्ययन से पता चलता है कि इसमें अति प्राचीन गोंडवाना महाद्वीप की चट्टानें है इस पठार का विकास बहुत ही पुराना है। इस पठारी क्षेत्र में कोयला का अकूत भंडार है जिससे दामोदर घाटी में बसे उद्योगों की उर्जा सम्बंधी आवश्यकताएं पूरी होती हैं। छोटानागपुर का पठार तीन छोटे-छोटे पठारों से मिलकर बना है जिनमें रांची का पठार, हजारीबाग का पठार और कोडरमा का पठार शामिल है। इनमें रांची का पठार सबसे बड़ा पठार है "छोटानागपुर की मुख्य विशेषताओं में से एक 'पाट भूमि' है। इसे भारत का रूर भी कहा जाता है, क्योंकि वहाँ संसाधनों की प्रचुरता है। भारत में खनिज संसाधनों का सबसे महत्वपूर्ण संकेंद्रण नागपुर में है।"[1] दामोदर घाटी में कोयले के विशाल भंडार है और हजारीबाग जिला विश्व में अभ्रक के प्रमुख श्रोतों में से एक है। अन्य खनिजों में तांबा, चूना पत्थर, बॉक्साइट, लौह अयस्क, एस्बेस्टॉस और ऐपाटाइट प्रमुख है।

झारखंड

"झारखंड अर्थात 'झार या झाड़' जो स्थानीय रूप में वन का पर्याय है और 'खंड' यानी टुकड़े से मिलकर बना है। अपने नाम के अनुरूप यह मूलत: एक वन प्रदेश है जो झारखंड आंदोलन के फलस्वरूप सृजित हुआ, जिसे बाद में कुछ लोगों द्वारा वनांचल आंदोलन के नाम से जाना जाता है। प्रचुर मात्रा में खनिज की उपलब्धता के

कारण इसे 'भारत का रूर' भी कहा जाता है जो जर्मनी में खनिज प्रदेश- के नाम से विख्यात है।"[2] कोयले के उत्पादन के क्रम में तथा कोयले के संचित भंडार के क्रम में भारत में इसका प्रथम स्थान है। 72 वर्ष पहले आदिवासी महासभा ने जयपाल मुंडा की अगुवाई में अलग 'झारखंड' का सपना देखा। वर्ष 2000 में केंद्र सरकार ने 15 नवंबर (आदिवासी नायक बिरसा मुंडा के जन्म दिन) को भारत का 28 वां राज्य बनाया जो भारत के नवीनतम राज्यों में से एक है। बिहार के दक्षिणी हिस्से को विभाजित कर झारखंड प्रदेश का सृजन किया गया था। औद्योगिक नगरी रांची इसकी राजधानी है। इस प्रदेश के अन्य बड़े शहरों में धनबाद, बोकारो एवं जमशेदपुर शामिल है।

सीमाएं-

झारखंड की सीमाएं उत्तर में बिहार, पश्चिम में उत्तर प्रदेश एवं छत्तीसगढ़, दक्षिण में उड़ीसा और पूर्व में पश्चिम बंगाल को छूती है। लगभग संपूर्ण प्रदेश छोटानागपुर के पठार पर अवस्थित है। झारखंड की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से खनिज और वन संपदा से निर्देशित है। लोहा, कोयला, माइका, बॉक्साइट, फायर क्ले, ग्रेफाइट, कायनाइट, सेलीमाइट, चूना पत्थर, यूरेनियम और दूसरी खनिज संपदाओं की प्रचुरता की वजह से वहाँ उद्योग धंधों का जाल बिछा है। झारखंड न केवल अपने उद्योग धंधे में इसका इस्तेमाल करता है बल्कि दूसरे राज्यों को भी इसकी पूर्ति करता है।

उद्योग धंधे-

झारखंड में भारत के कुछ सर्वाधिक औद्योगीकृत स्थानों में जमशेदपुर, रांची, बोकारों एवं धनबाद इत्यादि का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत का सबसे बड़ा उर्वरक कारखाना

सिंदरी में स्थित था जो अब बंद हो चुका है। भारत का पहला और विश्व का पांचवा सबसे बड़ा इस्पात कारखाना टाटा स्टील जमशेदपुर में है।

झारखंड (झरिया)-

झरिया भारत के झारखंड प्रांत का एक शहर है जो धनबाद के पास स्थित है। झरिया अपनी समृद्ध कोयला संसाधन के लिए प्रसिद्ध है। झरिया के कोयला से कोक बनाने का कार्य किया जाता है, जिसका प्रयोग प्रमुख रूप से लौह इस्पात उद्योग में होता है। झरिया, धनबाद शहर और अर्थव्यवस्था के विकास में एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, धनबाद शहर के एक भाग के रूप में माना जा सकता है। झरिया झारखंड राज्य में 15वां सबसे बड़ा शहर है।

पुनर्वास- राज्य सरकार के अनुसार झरिया के शहर के नीचे बेकाबू आग लगी है, जिसको बुझाना बहुत मुश्किल हैं, इस आग ने पूरे शहर को अपने कब्जे में ले लिया है, जो जान -माल के लिए अत्यन्त असुरक्षित है, इसके कारण राज्य सरकार द्वारा झरिया को स्थानांतरित किया जा रहा है। भारत का अधिकांश कोयला क्षेत्र झरिया में है। इस क्षेत्र में कोयला खनन की शुरूवात 1894 में हुई थी।

कुछ प्रमुख कोयला क्षेत्रों का संक्षिप्त परिचय-

गोंडवाना कोयला क्षेत्र-

यह इस क्षेत्र के अंतर्गत दामोदर घाटी के प्रमुख कोयला क्षेत्र के अंतर्गत समाहित है।

रानीगंज कोयला क्षेत्र- पश्चिम बंगाल का यह रानीगंज कोयला क्षेत्र दामोदर घाटी में स्थित है जो देश का सबसे महत्वपूर्ण और बड़ा कोयला क्षेत्र है। इस क्षेत्र से लगभग देश का 33 प्रतिशत कोयला प्राप्त होता है।

झरिया कोयला क्षेत्र -धनबाद जिले में स्थित झरिया कोयला क्षेत्र धनबाद जिले का सबसे बड़ा उत्पादक क्षेत्र है। देश में 90-80 प्रतिशत कुकिंग कोयले (भोजन पकाने के काम आने वाला कोयला) का भंडार यही है।

गिरगिड कोयला क्षेत्र - झारखंड राज्य में स्थित वहाँ के कोयला की मुख्य विशेषता यह है कि इससे अति उत्तम प्रकार का कोक तैयार होता है।

भारत में मुख्यत: चार चट्टानें पाई जाती है जिनमें कुछ ऐसी हैं जो कोयले के लिए जानी जाती है। जो इस प्रकार है-

1. धारवाड़ चट्टानें
2. गोंडवाना चट्टानें

ये दोनों चट्टानें छोटानागपुर क्षेत्र में मिलती है जिनसे कोयले को प्राप्त किया जाता है। कोयले के दृष्टिकोण से गोंडवाना चट्टानों को 'कोयला चट्टानों' के नाम से भी जाना जाता है।

सीमाएं- झारखंड की सीमाएं उत्तर में बिहार, पश्चिम में उत्तर प्रदेश एवं छत्तीसगढ़, दक्षिण में उड़ीसा और पूर्व में पश्चिम बंगाल को छूती है। लगभग संपूर्ण प्रदेश छोटानागपुर के पठार पर अवस्थित है।

नदियां- कोयला, दामोदर, खड़कई, और सुवर्ण रेखा वहाँ की प्रमुख नदियाँ हैं। संपूर्ण भारत में वनों के अनुपात में यह प्रदेश एक अग्रणी राज्य माना जाता है झारखंड की अर्थ व्यवस्था मुख्य रूप से खनिज और वन संपदा से निर्देशित है। लोहा, कोयला, माइका, बॉक्साइट, फायर क्ले, ग्रेफाइट, कायनाइट, सेलोमाइट, चूना पत्थर, यूरेनियम और दूसरी खनिज संपदाओं की प्रचुरता की वजह से वहाँ उद्योग धंधों का जाल बिछा है।

संदर्भ ग्रन्थ

1 http://hi .wikipedia.org/s 70 (मुक्त ज्ञान कोष विकिपीडिया से

2. http://hi.wikipedia.org/s/22e

3.1 आदिवासी संस्कृति पर बाह्य प्रभाव

आदिवासी संस्कृति श्रम प्रधान व प्रकृति सहचरी रही है। संस्कृतियों पर प्रभाव की ऐतिहासिकता में मूलतः लूट के लिए आक्रमण व साम्राज्यवाद के साथ विविध धार्मिक आस्था मूलक, भावनात्मक तथा तत्जन्य प्रतिरोधी संस्कृति का प्रादुर्भाव व प्रसार रहा है। भारत में आदिवासी संस्कृति पर वाह्य प्रभाव में भी वर्गीय समाज का शोषणपरक ढांचा भी प्रभावी कारक रहा है इसके प्राचीन प्रमाण तो विस्तारवादी जनपद काल में भी खोजे जा सकते हैं परन्तु सामन्ती काल के उत्तरार्ध व ब्रिटिश काल में यह व्यापकतम रूप में दिखाई देता है भारतीय इतिहास में श्रम विभाजन की यह विशिष्टता यह रही कि यह जातिगत ढांचे में ढलकर रूढ़ हो गई और ब्राह्मणवादी श्रेष्टता के मानक के रूप में साम्राज्य के साथ जुड़कर शासकीय विचार धारा बन गई। यह शासकीय विचारधारा विभिन्न ऐतिहासिक व्यवस्थाओं में अपनी नमनीयता एवं लोच के कारण नए-नए रूप धारण की अमानवीय शोषणकारी अंतरवस्तु बरकरार रखते हुए गतिमान रही यह ब्राह्मणवाद आज भारतीय जनता के विकास की राह में सबसे बड़ी बाधाओं में एक है। गौतम बुद्ध ने ब्राह्मणवाद के खिलाफ संघर्ष किया, सैकड़ों वर्षों के लिए उसे पराजित भी किया। नाथों, सिद्धों, कबीर, नानक, दादू, रैदास ने ब्राह्मणवाद के खिलाफ संघर्ष किया। ब्राह्मणवाद को उखाड़ फेंकने का क्रांतिकारी अभियान डॉ. अंबेडकर और रामास्वामी ने चलाया और काफी सफल भी रहे। आज ब्राह्मणवाद को कायम रखना सिर्फ ब्राह्मणों का नहीं बल्कि सभी शोषक वर्गों का स्वार्थ बन गया है। समाज में शोषितों के सबसे बड़े हिस्से शूद्र, अछूत और आदिवासी के हैं, इनके शोषण से, इनको दबाकर रखने से जिसको भी लाभ होता है- वह चाहे ब्राह्मण हो अथवा गैर ब्राह्मण- वह नहीं चाहता कि ब्राह्मणवाद खत्म हो। आज

आदिवासी संस्कृति में विकास की राह में सामाजिक दृष्टि से सबसे बड़ी बाधा ब्राह्मणवाद है। आदिवासियों की जातीय पहचान को तोड़ने और विकृत करने तथा वहाँ की जातीय संस्कृति मूल्यों को नष्ट भी किया गया। आदिवासी संस्कृति और ब्राह्मणवादी संस्कृति में पूरी तरह से असमानता है, लेकिन आदिवासियों पर हिन्दू संस्कृति अपनाने का दबाव है। जबकि उनकी संस्कृति आदि संस्कृति है। उनका रहन-सहन, पूजा व उनके देवता भी पूरी तरह से अलग हैं। इन सभी प्रश्नों को 'धार' व 'पाँव तले की दूब में' प्रमुख रूप से उठाया गया है।

आदिवासी संस्कृति बुनियादी तौर पर समाज के सभी सदस्यों की समानता व जनतांत्रिक मूल्यों पर आधारित संस्कृति रही है, जबकि ब्राह्मणवादी संस्कृति बुनियादी तौर पर मनुष्यों की सामाजिक समानता की विरोधी है। आदिवासी संस्कृति शोषितों की संस्कृति रही है जबकि ब्राह्मणवादी संस्कृति शोषकों की संस्कृति रही है। शोषकों की इस संस्कृति को कथाकार संजीव ने बखूबी पहचाना है। महेन्दर बाबू और पं. सीताराम दोनों मिलकर आदिवासी मैना के पिता टेंगर को अपनी तरफ मिला लेते हैं और उनकी सारी जमीन हड़प लेते हैं। उसी की जमीन पर तेजाब का कारखाना लगा देते है। वह ऐसा खुद नहीं करता बल्कि उसे एक साजिश के तहत वहाँ तक पहुंचाया गया है। जिसे वह समझ नहीं सका, जबकि मैना यह सब समझती है। यह उपन्यास ब्राह्मणवादी संस्कृति और उसके एक-एक रेशे को परत-दर-परत उभारता चलता है। सबसे पहले माफिया सरगना बाबू महेन्दर सिंह और पं. सीताराम मैना की मां को डायन घोषित कराके मरवा डालते हैं क्योंकि वह मैना के पिता को उन माफियाओं तक नहीं पहुचने देती थी और अपनी जमीन उनके हाथों में नहीं देना चाहती थी। ब्राह्मणवादी संस्कृतियों के चलते कर्मकांड घर कर गया। वे भी धर्म-अधर्म को,

परमात्मा को, पाप-पुण्य को स्वीकार करने लगे। पहले उनके देवता पहाड़ों पर वृक्षों पर रहा करते थे, किंतु अब मंदिरों में रहने लगे। इसी संस्कृति के चलते मैना का बाप साधू बन गया है। कथाकार इन्हीं सूत्रों को इन शब्दों में व्यक्त करता है-

"बाप तो साधू है, धर्मात्मा है। देखते नई, ई पूरा जमीन महेन्दर बाबू को दान में दे दिया। गोश्त नई खाता, मछली नई खाता, दारु नहीं छूता, पं. सीताराम ने कंठी लिया है। मां तो गुलगुलिया था, बाप ई गांव का सौंताल है। लेकिन झगड़ा तो बाप-बेटी का है।"[1]

अब आदिवासियों की अनार्य संस्कृति पर आर्य संस्कृति हावी होती जा रही है ब्राह्मणवाद और उसकी संस्कृति के जितने भी कर्मकांड हैं, सभी उन आदिवासियों पर थोपे जा रहे हैं। शास्त्र, वेद पुराण, मनुस्मृति आदि के अनुसार उनको नियंत्रित किया जा रहा है जिससे उन पर भी ये कर्मकांडी दिकू अपना एकछत्र वर्चस्व स्थापित कर सके। उपन्यास इन दबे हुए कर्मकांडों की जड़ों तक पहुंचता है। प.सीताराम ने इन तथ्यों की पुष्टि इन शब्दों में किया है- "शास्तर में कहा गया है कि थोड़ी देर बाद पंडित ने दाहिने हाथ से सिर खजुलाया जैसे शास्त्र के पन्ने पलट रहे हो। दूसरे के पत्नी से जो बुरा कर्म करे या पति के रहते पत्नी दूसरे पुरुष से संबंध करे ये सब रौरव नरक के भागी होते हैं। का जी टेंगर, तुम्हीं बोलो एक तो मैना तुमरी बेटी है, दूसरे साधु-महात्मा धरम का मरम तुमसे जास्ती काम बुझता है! तुम सौंतालों में तो ऐसी औरत का जीते-जी क्रिया कर्म कर देते हैं न?

हिंदू शास्तर में यह भी लिखा है कि संतान के पाप-पुन्न का फल पितरों को भोगना पड़ता है।"[2] टेंगर लपककर पंडित सीताराम के पांव पकड़ लेता है। अब पंडित शास्त्र की बातें करते हुए उसे विविध ब्राह्मणवादी कर्मकांडों की तरफ ले जाते हुए कहता है कि-

"मगर शास्तर में ई-हो लिखा है कि पराश्चित करने से पितरों को फिर से स्वर्ग मिल सकता है। मैना और फोंकल फिर से सतनारायण बाबा की कथा सुन ले और बामन बिरादरी को भोज दे दे तो"[3]

वहाँ कथाकार संजीव ब्राह्मणवाद के समाजशास्त्र की औपन्यासिक पड़ताल बड़ी सघनता के साथ करते हैं और यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि प्रभुत्वशाली वर्ग किस तरह से हाशिए के लोगों, आदिवासियों आदि पर धार्मिक अधिकार जमाने की कोशिश में लगे हुए हैं। हर कबीले के अंदर ब्राह्मणवाद अपने को स्थापित करना चाहता है। कथाकार बड़े स्पष्ट शब्दों में दो संस्कृतियों के मिलन से फैली विद्रूपता को कथातंतु के माध्यम से रेखांकित करता है। उपन्यास के प्रमुख पात्र मामा के शब्दों से ब्राह्मणवादी संस्कृति को कथाकार और पुष्ट करवाता है।

"देखो, ई दुनिया है न बिल्कुल फानी, कोई न कुछ लेके आता है, न लेके जाएगा। सब खुदा का। इस देह से चार आदमी का भला हो जाये वोई पुन्न है।"[4]

'पांव तले की दूब' उपन्यास आदिवासी संस्कृति और उनके समाज तथा उनकी समस्याओं जैसे मूल भूमि से विस्थापन शोषण आदि को गहरे अर्थबोध के साथ हमारे सामने लाता है। इन उपेक्षितों की लड़ाई सुदीप्त अपने नीतिगत फैसले के तहत लड़ता है। वह कहां तक सफल हो पाया यह अलग की बात है। सुदीप्त एक दिकू है, किंतु सभी दिकू आदिवासियों की लड़ाई लड़े, यह कठिन था। अधिकांश दिकुओं की मनोकांक्षा है किसी न किसी तरीके से उनकी जमीन को हड़पना। उनकी स्थितियां अब बद से बद्तर हो चुकी है। कथाकार इसका संकेत समीर के माध्यम से देता है-

"कई आदिवासी घरों में घुमाते चलाते हुए तुम (सुदीप्त) मुझे ले चल रहे थे। वे इतने गरीब थे कि कपड़ों के नाम पर चिथड़े का कच्छा पहने हुए थे"।[5]

उपन्यास 'पांव तले की दूब' आदिवासी जीवन की उन विसंगतियों की तरफ संकेत करता है जिसके चलते आदिवासी जीवन कठिनाईयों की तरफ बढ़ता है। और उनका जीवन नारकीय होता जाता है और गरीबी के इस आलम में भू -माफिया पैसों का लालच देकर इनकी जमीनों को हड़प लेते हैं। इन विसंगतियों की तरफ कथाकार संकेत करता है- "धनकटनी का रहस्य आदिवासी लोगों की दो कमजोर नसें है- अरण्यमुखी संस्कृति और उत्सवधर्मिता "[6]

उपन्यास इस तरफ भी संकेत करता है कि पूंजीपति माफिया पहले तो बड़े-बड़े लालच देकर अपनी शक्तियों का एहसास कराते हैं फिर पैसों का प्रलोभन देकर उनकी जमीन को हथिया लेते हैं। मजदूर आदिवासी उनकी इस चाल-बाजी को नहीं समझ पाते। यह बात यथासत्य है कि बड़े लोगों की नकल, छोटे लोग करते हैं। वे अपनी भेष-भूषा रहन-सहन आदि से प्रभावित होते हैं, इस कारण वे बड़ों की (दिकू) संस्कृतियों को आत्मसात कर लेते हैं, जबकि आदिवासियों की समृद्ध परंपरा रही है-

"देखो किस्कू, तुम जिस समाज से आए हो वह सदियों से उपेक्षित रहा है। आज जो थोड़ी सी रोशनी तुम तक सरकार की में हरबानी या अन्य किसी तरीके से तुम जैसों तक आ पा रही है इसका इस्तेमाल तुम्हें समाज में तब्दिली लाने के लिए करना चाहिए, पर पहले तुम इन गंदी आदतों से बाज आओ तब न! तुम क्या सोचते हो कि तुम कम हो? जानते हो तुम्हारा इतिहास क्या रहा है।"[7]

भारत में आदिवासी समाज के पास समृद्धशाली इतिहास है जिससे वह अनभिज्ञ है। वीरों-महावीरों, शहीदों, क्रांतिकारियों और राजा-महाराजाओं से लेकर अनेकानेक क्षेत्रों में पारंगत विद्वान रहे। आदिवासियों का इतना विस्तृत इतिहास देश के कोने-कोने में विद्यमान है जिसे सावर्जनिक किए जाने की आवश्यकता है। ये गौरवपूर्ण इतिहास

भारतीय आदिवासी समाज को गौरवान्वित करने के लिए पर्याप्त है। जरूरत है आदिवासी अपने भीतर एक सोच पैदा करें। जब सोच पैदा होगी तब वे समाज को जानने लगेंगे। जानकारी ही विकास की दशा और दिशा का निर्धारण करती है, इसलिए आदिवासियों को अपने अंदर की प्रबल इच्छा को जगाना होगा। आदिवासी समाज अभी भी आश्रितों, साधनों व संसाधनों पर खड़ा दिखाई देता है। जबकि आत्मनिर्भरता के साथ सामाजिक संसाधन पैदा करने की आज सबसे बड़ी जरूरत है। अपने गौरवशाली इतिहास को विस्मृत कर उनकी जय-जयकार करना, जिन्होंने सबकुछ छीनकर, लूटकर न सिर्फ जंगलों, पहाड़ों व कंदराओं में निर्वासित जीवन के लिए बाध्य किया बल्कि कमर में पूंछ और सिर पर सींग भी उगा दिया। अंबेडकर ने कहा था कि- "गुलामों को गुलामी का एहसास करा दो, वह गुलामी की बेड़ियों को तोड़ देगा, जिस दिन आदिवासियों में लिखने पढ़ने और चिंतन करने की भूख जागृति होगी, उसी दिन से उनकी समस्त समस्याओं का अंत होना प्रारंभ हो जायेगा।"[8]

संदर्भ सूची 3.1

1 -संजीव,धार पृष्ठ सं. 18

2 -वही पृष्ठ सं. 24

3 -वही पृष्ठ सं. 24

4-वही पृष्ठ सं. 18

5 -पाँव तले की दूब पृष्ठ सं. 18

6 -वही पृष्ठ सं. 15

7 -वही पृष्ठ सं.31

8 -के. आर. साह. आदिवासी सत्ता -नवम्बर 2012 ,अंक 10 -11

3.2 आदिवासियों की समस्याएं

आदिवासी समाज एक शांतिप्रिय समाज है, जो भारतीय मूल का प्रथम समाज होने का गौरव भी प्राप्त कर चुका है। आदिवासी लोग पारंपरिक ढंग से जीवनयापन करते हुये अपने समाज को सुखमय बनाने की प्रक्रिया में निरंतर लगे होते हैं। वे अपनी सीमित आकांक्षाओं के कारण एक बन्द दुनिया में जीवन यापन करते हैं। वे बाहरी समाज, संस्कृति से कटे हुए है, जब भी कोई बाहरी समाज या व्यक्ति इनके संसाधनों या जमीन पर कब्जा करने की कोशिश करता है तो ये आदिवासी बलपूर्वक अपने संसाधनों जल, जंगल, जमीन तथा अपने समाज व संस्कृति की रक्षा करने के लिए संघर्ष करते हैं। किंतु अब एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि -आधुनिक काल के प्रारंभ होने के साथ ही औद्योगीकरण, नगरीकरण का प्रारंभ होता है। अंग्रेजों के भारत आगमन तथा उनके द्वारा आदिवासी क्षेत्रों पर जबरन कब्जा करने के साथ ही आदिवासियों की समस्याएं बढ़ती गई। आदिवासी समाज के अनेक संघर्षों के बावजूद उनके क्षेत्रों पर विदेशी काबिज होते चले गये और उनके संसाधन कोयला, अयस्क और वेशकीमती प्राकृतिक संपदाओं पर अपना अधिकार कर लिया। अंग्रेजों ने बलपूर्वक उनकी जमीनों पर कब्ज़ा किया और उन्हें विस्थापित होने के लिए मजबूर होना पड़ा, आदिवासियों के जमीन खोने का इतिहास यहाँ द्रष्टव्य है-

“1869 में राखालदास हालदार के नेतृत्व में छोटा नागपुर में लैंड सेटलमेंट सर्वे हुआ। सर्वे से पता चला कि 1869 तक छोटानागपुर के 35 परगनों में 1482 गांवों में मुंडा आदिवासी अपने परंपरागत भू-स्वामित्व को खो चुके थे। सिर्फ 152 गांवों में ही

(मरंगहदा की तरफ) उनकी परंपरागत भूमि व्यवस्था-खूरकट्टी-बची थी जो छोटानागपुर राज्य सिर्फ एक प्रतिशत इलाका था।"[1]

21वीं सदी में पहुंचकर भी हमारे देश का आदिवासी समाज जहां विकास की बाट जोह रहा है। वहीं दूसरी तरफ सरकार की उदासीन नीतियों के कारण उनकी स्थिति ज्यों की त्यों ही है। विकास के नाम पर छले जा रहे आदिवासियों के पलायन और विस्थापन आदि समस्याओं पर केंद्रित ये सभी तथ्य समाज और सरकार के सम्मुख कई सवाल खड़े करते है।

उपन्यास 'धार' आदिवासियों की समस्याओं को बहुत गहरे स्तर से उठाता है। आज के भूमंडलीकरण मल्टीनेशनल कंपनियों की आपाधापी में मानवीयता किस गर्त में चली गई है, यह उपन्यास उन सभी तथ्यों की पड़ताल करता है और आदिवासियों की कई समस्याओं को समाज के सामने उजागर करता है। कथाकार संजीव बंगाल के संथाल परगना में स्थित सहारजोड़ी नामक स्थान को कथा का केंद्र बनाकर आदिवासी अंचल की तमाम समस्याओं की तरफ ध्यानाकर्षित करते हैं। वहाँ आदिवासी टेंगर की सारी जमीन हड़पकर भूमाफिया महेंद्र बाबू उस जमीन पर तेजाब की फैक्टरी लगा देते हैं, फैक्टरी के दुर्गन्ध से जहां आस पास के कई इलाके त्रस्त हो चुके हैं, वहीं फैक्टरी के कचरे से कई गांवों के नालों, तालाबों का पानी दूषित हो गया है, पूरे गांव के लोग न पीने का स्वच्छ पानी पा रहे हैं न शुद्ध हवा। पहले जहां खेती से चार-छह महीने का अनाज मिल जाता था, अब माफियाओं की दबंगई से बड़ी-बड़ी फैक्टरियों के खुलनें से, वो भी बंद हो गया है। पहले ही ये आदिवासी नौकरी तथा काम के बहकावे में आकर अपनी सारी जमीन जायदाद उन माफियाओं के हाथों में सुर्पुद कर आये है जिसने इनको ही नहीं बल्कि पूरे इलाके को विनाश के कगार पर खड़ा कर दिया है।

"उनकी संस्कृति को नकारने और उनके अस्तित्व को खतरे में डालने वाले, नाक में दम कर देने वाली ताकतों के बावजूद दुनिया भर के देशज लोग शोषण, जातिवाद और दमन की ताकतों का मुकाबला करने के लिए अपने आप को संगठित और जाग्रत कर रहे हैं ताकि अपने विरूद्ध सारी विषमताओं के बावजूद अपनी पहचान बना सके और भविष्य निर्धारित कर सके।"[2]

आदिवासी समाज न तो शिक्षित है और न ही सरकार की तरफ से उन्हें शिक्षित करने के ठोस कदम ही उठाये जा रहे हैं। आदिवासी समाज में कार्य करने वाले गैर आदिवासी भी उन आदिवासियों को हेय दृष्टि से देखते हैं। आजादी के बाद इन संथाली जनजातियों की स्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं आया बल्कि वे समाज के हाशिये पर षड्यंत्रपूर्वक धकेले जा रहे हैं यही कारण है कि इन आदिवासियों के बुनियादी अधिकारों की अनदेखी हो रही है, यह बात अलग है कि बंगाल, झारखंड में संथालों के बाद उरांव, मुंडा बड़ी जातियां हैं, इनके अधिकारों का संघर्ष अलग राज्य के उभरने के बाद काफी मद्धिम पड़ा है। सामाजिक तौर पर आदिवासी अत्यंत पिछड़े और उपेक्षित हैं। "विकास शब्द से ही झारखंड के मूल निवासियों में दहशत पैदा हो जाती है क्योंकि इसके नाम पर उनका विस्थापन अधिक हुआ है।"[3]

आदिवासी समाज में एकता का अभाव, शिक्षा की कमी और प्रशासन के हस्तक्षेप से उनकी जमीनों पर माफियाओं, बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा कब्जा किया जा रहा है। शोषकों की पूरी व्यवस्था देखने में जनहितैषी होने का भ्रम पैदा करती है वे नेता हों ,अफसर हों ,ठेकेदार हों ,कारखानेदार हों या दलाल सभी तो गरीबों और शोषितों के उद्धार में लगे हुए हैं, ये आदिवासी समाज के ऐसे दुश्मन हैं जो देखने में जितना मूर्त है, उससे भी कई गुना ज्यादा अमूर्त हैं। निराशा भरे जीवन में आदिवासी

यदि आवाज को उठाये तो कहां उठायें। गोलबंदी या नारेबाजी करे तो किसके खिलाफ ,जब ऊपर से नीचे तक सभी उनका शोषण करने पर तुले हुए हैं।

'धार' उपन्यास में विस्थापन की त्रासदी एवं विभीषिका का वर्तमान स्वरूप दिखाई देता। आज जल, जंगल, जमीन की जो दिनदहाड़े लूट मची हुई है और आदिवासी स्त्रियों के साथ शोषण की अमानवीय घटनाएं हो रही हैं। 'धार' उपन्यास इसकी तरफ इशारा करता है। यह उपन्यास आदिवासी समाज के विस्थापन की पूर्व पीठिका है और अपने मूल स्थान से आदिवासियों को विस्थापित करने के लिए एक माहौल तैयार करता है। सरकार और औद्योगिक घरानें मिलकर उनके जंगल पर कब्जा करते हैं, उनको जीविका के संसाधनों से दूर करते हैं। स्वच्छ हवा में कारखानों की जहरीली गैसे घोलते हैं, जिससे इन आदिवासियों का जीवन अत्यंत दूभर हो गया है। इन क्षेत्रों में एक ऐसा माहौल बनाया जाता है कि वे बिना प्रतिरोध किये विस्थापित हो जाने को विवश हो जाते हैं। 'उपन्यास 'धार' बारीकी से इन घटनाओं की पड़ताल करता है और स्पष्ट करता है कि किस तरह से पूरी व्यवस्था आदिवासियों को प्रताड़ित करने पर तुली है। जुल्म किस तरह आदिवासी समाज पर हावी है, किस तरह पूंजीपति वर्ग आदिवासी समाज के कुछ लोगों को अपनी तरफ मिलाकर, उन आदिवासियों पर कहर बरपाते हैं। कथाकार, नायिका मैना के माध्यम से पूरे शोषण तंत्र और आदिवासी नारी अस्मिता को यथार्थ रूप में चित्रित करता है वहाँ एक कथन दृष्टव्य है-

"तू काये गया था बोल। वोई महेन्दर बाबू ,जो हमरा सब कुछ लूट लिया, तेरा सब हो गया और हम..?"[4]

आदिवासियों का विस्थापन आज की कोई नई घटना नहीं है। इसका इतिहास बहुत पुराना है। इसकी दर्द भरी कहानी का एक उदाहरण वहाँ दृष्टव्य है -

"1775 ई0 रानीगंज में पहली कोयला खदान खुलने के साथ ही विस्थापन की दर्द भरी कहानी की शुरुआत हुई।"[5]

इस तरह उद्योगों की स्थापना से शहरीकरण के विस्तार को गति मिली और पूरे क्षेत्र में शोषण के बहुआयामी रूपों का फैलाव हुआ। आदिवासियों की एक बड़ी आबादी को अपने परंपरागत साधनों से वंचित होना पड़ा। उसकी जमीन को छीन लिया गया, उनके जंगलों की, अंधा-धुंध कटाई से उनके रोजी रोजगार और जीविका के तमाम साधन छिन गये, आदिवासियों जनजातियों के विस्थापन के साथ ही उन क्षेत्रों में रहने वाले पशु, पक्षी भी मारे गये या उन्हें भी विस्थापित होना पड़ा।

"विश्वबैंक की एक रिपोर्ट में अनुमान लगाया गया है कि अकेले स्वर्णरेखा बहुउद्देशीय परियोजना ने 14000 हजार परिवारों यानी लगभग 70000 हजार व्यक्तियों को विस्थापित किया।"[6]

इस तरह आदिवासियों का विस्थापन सरकार के तमाम तरह के उपक्रमों द्वारा जारी है 'जल संसाधन विकास परियोजना' के नाम पर, औद्योगिकरण के नाम पर, खनन उद्योग के नाम पर, हर तरह से उन्हें विस्थापित किया जा रहा है। यदि इनके आकड़े को देखा जाय तो आदिवासियों के विस्थापन की सही जानकारी मिल जाती है।

इसी तरह झारखंड में औद्योगिकीकरण और विकास के नाम पर आदिवासियों की जमीन हड़प ली गई। इन उद्योगों में नौकरी के लिए उच्च तकनीकी ज्ञान जरूरी था, जो आदिवासियों के पास नहीं था। ज्यादातर लोगो को भगा दिया गया, कुछ को नौकरी मिली भी तो चतुर्थ श्रेणी में।

बी.पी.बलिगा ने लिखा है कि- "1980 ई. के दौर में कोयला खनन उद्योग पर्यावरण के बर्बादी के मुख्य कारक के रूप में स्थापित हो गया, जिसके माध्यम से प्रति वर्ष 75 वर्ग किलोमीटर भूखंड बर्बाद हो गया।"[7]

इस तरह खनन उद्योग से भी भारी मात्रा में विस्थापन हुआ है। सरकार आदिवासियों के जंगलों को सुरक्षा परियोजनाओं और अभ्यारण्यों के नाम पर छीन ले रही है। इन सुरक्षा परियोजनाओं और विस्थापन के कारण उनको तमाम तरह की पीड़ा और कष्ट झेलने पड़ते हैं। आदिवासी के जीवन में विषम परिस्थितियों को पैदा करने वाले, भूमाफिया अपने निजी स्वार्थ के लिए पूरे आदिवासी समाज को हाशिए पर धकेल रहें हैं।

"महेन्दर बाबू मैना के बाप के पास आये, बोले ऐसे तो सब भूखल-ए मर जायेगा, आप जमीन का बंदोबस्त करो तो हिया एक ठो कारखाना लगा दें। टेंगर तो महात्मा आदमी, अपना सब जमीन दे दिया। एक-ई महीने में तेजाब का फैटरी लग गया।"[8]

कथाकार ने जिस घटना को केंद्र बनाकर आदिवासियों की समस्याओं को समझाने का प्रयास किया है। यह घटना 1979 से 1982 के बीच संथाल परगना के देवघर सब डिवीजन के चित्रा कोयला क्षेत्र के सहारजोड़ी नामक स्थान में घटी थी, जहां 'जनमुक्ति मोर्चा' मोर्चा नामक एक क्षेत्रिय संगठन के नेतृत्व में एक कोयला खदान मजदूरों ने शुरू की थी। इसका प्रबंधन और संचालन भी खदान में काम करने वाले मजदूर ही खुद करते थे। सरकार को यह बहुत नागवार गुजरा, क्योंकि इस जन खदान से निकाला गया कोयला कुछ सस्ते में बिकता था, जबकि सरकारी खदान से निकाला गया कोयला महंगा बिकता था। इसी कारण सरकार ने पुलिस बल की सहायता से इस खदान को नष्ट कर दिया और इसे चलाने वाले मजदूरों को गिरफ्तार

कर लिया। इस घटना की जांच के लिए दिल्ली की एक संस्था 'पीपुल्स युनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स' (पी.यू.डी.आर.) ने इस घटना की जांच-पड़ताल की तथा निष्कर्ष निकाला जो एक रिपोर्ट के रूप में 1982 में प्रकाशित हुई। इस रिपोर्ट के आकड़ें काफी गलत थे। इसमें यह दिखाया गया था कि जन खदान में न कोई व्यवस्था है न कोई स्वास्थ्य सुविधा। खदान के बगल में झुग्गी झोपडी हैं, अत: वहाँ खतरा है। ऐसे तमाम कारण बिना किसी आधार के दिखाए गए थे। जिसके चलते जन खदान को बंद करना ही सरकार ने अनिवार्य समझा गया। 'सहार जोड़ी' की जन खदान का निर्माण और सरकार द्वारा उसे बंद कर देना आदिवासी समाज के लिए एक बड़ी त्रासदपूर्ण घटना थी। आज जब सरकार लोगों को रोजगार नहीं दे पा रही है, ऐसी हालत में मजदूरों के जन संगठन ने जन खदान का विकल्प पेश करके हजारों से भी ज्यादा स्त्री-पुरुषों (जिसमें अधिकतर आदिवासी थे) को रोजगार मुहैया करवाया। इन मजदूरों ने अपने लोगों को संगठित करके साहस, परिश्रम और सूझबूझ से कोयला खदान शुरू की, जिसका संचालन और प्रबंधन भी सरकारी खादानों की अपेक्षा कुशल ढंग का था।

वह खदान मजदूरों के सिर्फ रोजगार का साधन नहीं थी, बल्कि वह उनकी सृजनशीलता और उनके अंदर छिपे भव्य गुणों की भी अभिव्यक्ति थी। मजदूरों ने कोयले के उत्पादन के अलावा वहाँ प्रबंधन कार्यालय खोला, स्कूल, अस्पताल, प्रौढ़ शिक्षा और शिशु पालन केंद्र भी खोला। वहाँ काम करने वालों को वेतन कोयले के रूप में दिया गया और वेतन देने के बाद बचे हुए कोयले को सरकारी संपत्ति मानकर सुरक्षित रखा गया। मजदूरों ने सरकार को 'ईस्टर्न कोलफिल्ड लिमिटेड कंपनी' को और उससे संबंधित अधिकारियों को पत्र लिखकर कहा कि वे खदान निरीक्षण कर जायें और यह भी कहा गया कि सरकार खदान को अपने अधिकार में ले ले और

उसका प्रबंधन, संचालन भी खुद करे और हम जैसे मजदूरों को अपने कर्मकार के रूप में ले ले।

सरकार 'जन खदान' को बंद क्यों करवाती है इसके पीछे के तमाम कारणों की उपन्यास धार में पड़ताल की गई है। तथ्य यह था कि सहारजोड़ी की जन खदान के सिर्फ आधा किलोमीटर की दूरी पर 'ईस्टर्न कोल फील्ड कंपनी' की एक खदान चलती थी और सरकार खुद उस क्षेत्र में और भी खदाने शुरू करने की योजना बना रही थी। इसके पीछे एक कारण सरकार का अधिक से अधिक फायदा कमाना भी था और कोयले को उच्च दाम पर बेचना भी था। इसका एक उदाहरण वहाँ दृष्टव्य है-

"अवैध खनन, और सरकारी खदान के कोयले से, दो रूपया सस्ता पड़ता है हमारा कोयला।"[9]

गरीब आदिवासियों और उनके सहयोगी गैर निम्न मध्यवर्गीय दिकूओं को भी भूमाफिया तरह तरह से प्रताड़ित करते है। उनसे चोरी से कोयला कटवाते हैं। पुलिस पकड़ती है तो उन्हें नक्सली घोषित करके निर्दयता पूर्वक पीटती है। इन तमाम समस्याओं की तरफ उपन्यास दृष्टिपात करता है। "जेल से रिहा हुए आज छह महीने गुजर गए और जेल की अवधि को जोड़ लें तो पूरे तीन साल। बेकार के बह गए तीन साल। जेल में नक्सली के नाम पर जो अमानुषिक यंत्रणा उन्हें दी जाती रही, उसकी टीस अंग-अंग से टहकती है। अब भी.....। ठेकेदार अब भी ढोर-डांगरों की तरह उन्हें काम कराने के लिए हांक ले जाते हैं और चूसकर छोड़ देते हैं। बड़े जोतदार अब भी खेती में उनसे अमानुषिक श्रम कराते हैं और जरा-जरा सी बात पर पीटते हैं।"[10]

केवल आदिवासी ही इस दंश की पीड़ा से आक्रांत नहीं है बल्कि कोयलांचल क्षेत्रों में रहने वाले गैर आदिवासी भी आज भूमाफियाओं, पूंजीपतियों से प्रभावित हुए हैं वे भी अपने रोजगारों से वंचित हुए हैं।

यह उपन्यास इन सभी समस्याओं की तरफ जाता है। आदिवासी किस तरह से जीवन-यापन और क्षुधापूर्ति के लिए विवश लाचार तथा असहाय है, यह उपन्यास उसका यथार्थ जीवन दिखाता है। इस तथ्य को कथाकार मैना के माध्यम से उजागर करता है- " लौटकर हम एक अचरज देखा , हम तो भाग गये, लेकिन कोइला चोर नहीं भागे, वे हियांई है। और हम जगह जगह का ठोकर खा के आ रआ है।"[11]

इस तरह आदिवासी नारकीय जीवन जीने के लिए बाध्य हो उठे है, न तो सरकार उन पर ध्यान दे रही है न ही प्रशासन। अपनी ही जमीन पर आज आदिवासी कोयला खनन नहीं कर सकता। पुलिस प्रशासन कितनी गंदगी और निष्कृष्टता के साथ समाज के सामने उपस्थित है, धार उपन्यास इनकी हकीकत को व्यक्त करता है। आदिवासी क्षेत्र में पुलिस आतंक का पर्याय बन चुकी है।

आदिवासी क्षेत्रों में संथालों की जमीन गैर आदिवासी नहीं खरीद सकते लेकिन भूमाफिया एक नीति के तहत उनकी जमीन हड़प रहे हैं। उपन्यास धार ऐसी अमानवीयता को सही ढंग से दिखाता है।

"आपको क्या पता था कि वहाँ सौतालों की जमीन आप कानूनन खरीद ही नहीं सकते। तब महेन्दर बाबू ने कानून में सुराख किया। एक सौंताल शंभू सोरेन को पैसे देकर वहाँ एक झोपड़ी डाली और जंगल के शाल कटवाकर बेचने लगे।"[12]

उपन्यास धार आदिवासियों के शोषण, उनके जल, जंगल, जमीन पर जबरन कब्जा होने तथा तमाम संवैधानिक कानून होने के बावजूद उन पर हो रहे अमानवीय

अत्याचारों को प्रमुखता से उठाता है। आदिवासियों को झूठे वादे देकर, झूठे दबाव दिखाकर, झूठे दिलासे देकर उन्हें बहला-फुसलाकर कर आहिस्ता-आहिस्ता उनकी सारी जमीन हड़प ली जाती है। उपन्यास कामगार औरतों के माध्यम से नारी शोषण के विभिन्न परतों को उजागर करता है।

'पांव तले दूब' उपन्यास हाशिए के समाज को कथा के केंद्र में लाता है। आदिवासी समाज शोषित है और इसके शोषण के विविध आयाम हैं। सरकार पूंजीपतियों भूमाफियाओं द्वारा आदिवासियों की जमीनों पर कब्जा किया जाता रहा है। धार उपन्यास में आदिवासियों का शोषण और उनकी समस्याएं अलग है वहाँ मैना और शर्मा के अलावा और कोई ठोस चरित्र नहीं है जो आदिवासियों को उनका हक दिला सके। उनकी समस्त समस्या का निराकरण कर सके। मैना अपने आप को पूरी तरह संघर्ष में समर्पित कर देती है लेकिन उसके साथ न उसके घर परिवार न ही उसके समाज से कोई सहयोग मिल पाता है जिससे की वह अपने को संभाल ले। वह लड़ते-लड़ते मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। उसे रोलर से दबा दिया जाता है।

'पांव तले की दूब' का कथा नायक सुदीप्त हैं, जो अपने घर परिवार से नाता तोड़ चुका है,जिसने अपनी पूरी जिंदगी आदिवासियों के अधिकार संघर्ष और समस्याओं को सुलझाने में लगा दिया। पाँव तले की दूब उपन्यास आदिवासियों की प्रमुख समस्याओं जल, जंगल, जमीन और विस्थापन की समस्याओं का प्रमुख रूप से उठाता है। 'पांव तले की दूब' की कथा भूमि छोटा नागपुर का पठारी इलाका डोकरी अंचल है। आदिवासियों के न्याय, अधिकार व उनकी समस्याओं के लिए कटिबद्ध रहने वाला सुदीप्त इसी अंचल में इंजीनियर बनकर आता है। वह जनांदोलनों से जुड़ा एक जनोन्मुखी लेखक है। वह इस अंचल के आदिवासियों के नारकीय जीवन को समझने

का अथक प्रयास करता है, किंतु वह वहाँ के अंर्तविरोधों के चलते असफल हो जाता है।

आदिवासी जीवन की जिस समस्या को लेकर सुदीप्त आंदोलनों में सक्रिय रहा, वही आदिवासी सुदीप्त को समझ नहीं पाते। कथाकार ने इन आदिवासियों के जीवन का यथार्थ रूप दिखाया है। समीर कहता है कि- "कई आदिवासी घरों में घुमाते हुए तुम मुझे ले चल रहे थे। वे इतने गरीब थे कि कपड़ों के नाम पर चिथड़े का कच्छा पहने हुए थे। पुट्ठो तक खुले हुए। औरतें जैसे-तैसे बदन ढके हुए थी।"[13] आदिवासियों का जीवन, आज के पूँजीवादी में किस गर्त में समा जायेगा, इसकी परवाह किए बगैर सरकार अंधाधुंध फैक्टरियों को आदिवासी क्षेत्रों पर काबिज करा रही है।

"आदिवासी समाज के जीवन संघर्ष और परिवर्तन की चुनौतियों पर बात करते समय हमारे समाने पूरे विश्व में बिखरे पड़े तमाम आदिवासी समुदाय हैं- जो अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए संघर्षरत हैं। तथाकथित मुख्यधारा की संस्कृति और सभ्यता ने उनके सामने दो ही रास्ते छोड़े हैं या तो वे अपनी अस्मिता, अपना इतिहास अपनी परंपरा को मिटाकर, मुख्यधारा की वर्चस्ववादी संस्कृति को स्वीकार कर ले या फिर भौतिक रूप से पृथ्वी नामक इस ग्रह से अपना अस्तित्व मिट जाने के लिए अभिशप्त हो जायें।"[14]

आदिवासी संस्कृति और उनकी अपनी कमजोरियों की तरफ कथाकार ने संकेत किया है। आदिवासी अपने ही कर्मकांड में उलझते जा रहे हैं। जिसके कारण इनकी जमीनों को दूसरे चालाक लोग हथिया ले रहे हैं। आदिवासियों की इन प्रमुख समस्याओं का कथाकार ने सुदीप्त के माध्यम से संकेतित किया है-

"धन कटनी का रहस्य आदिवासी लोगों की दो कमजोर नसें हैं। अरण्यमुखी संस्कृति और उत्सव धर्मिता! अरण्यमुखी संस्कृति उन्हें सभ्यता के विकास से जुड़ने नहीं देती और उत्सव धर्मित इन्हें कंगाल बनाती है।"[15]

आज आदिवासियों की मूल समस्या जल,जंगल और जमीन को लेकर है। जिस जंगल के वे दावेदार हैं, उनको किस तरह वहाँ से विस्थापित किया जा रहा है, यह उपन्यास गहरे अर्थों में इन समस्याओं को उठाता है। यह विस्थापन किसके लिए हो रहे हैं? पूंजीपति अपने कारखानों के नाम पर उनकी जमीनी हक को, मालिकाना हक को, छीन रहे हैं। सुदीप्त इन आदिवासियों को सचेत करता है ताकि इनका शोषण न हो सके- "देखो किस्कू, तुम जिस समाज से आए हो वह सदियों से उपेक्षित रहा है पर पहले तुम इन गंदी आदतों से बाज आओ तब न ! तुम क्या सोचते हो कि तुम कम हो? जानते हो तुम्हारा इतिहास क्या रहा है? सिधू, कानू, चोट्टी, मुंडा, बिरसा मुंडा, सिनगी दई, कैली दई से अलवर्ट एक्का तक फैला हुआ है।"[16]

सुदीप्त जो शोषित आदिवासियों को उनके हक के लिए लड़ता था आज उसी क्षेत्र में इंजीनियर का पद प्राप्त करके आता है, अब भी वह आदिवासियों के प्रति समर्पित है- कथाकार संजीव ने विस्थापितों को उनके हक को दिलाने की मांग की है।

"लहू से लिखी जानी थी मेंझिया की कहानी। वे मेंरी नौकरी के शुरुआती दिन थे। मैं डोकरी के 'नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन' में इंजीनियर के पद पर बहाल होकर नया-नया ही आया था। यही वह जगह थी, जहां विस्थापितों की लड़ाई में मैं कभी सरीख हुआ करता था। बरसों पहले वहाँ 'डोकरी' और मकरा नाम के दो गांव हुआ करते थे।"[17]

संदर्भ सूची 3.2

1 -तलवार वीर भारत ,झारखंड के आदिवासियों के बीच एक एक्टीविस्ट के नोट्स पृष्ठ स. 594

2 -देशज कौन ?आदिवासी कौन ? पृष्ठ स. 45

3 -समकालीन जनमत (झारखंडी विकास के नाम पर विस्थापन-जेरोम जेराल्ड कुजूर) पृष्ठ स.67

4 -संजीव, धार पृष्ठ स.126

5 -समकालीन जनमत पृष्ठ स. 67

6 - वही

7 -समकालीन पृष्ठ स.70 -71

8 -धार पृष्ठ स.19

9 -धार पृष्ठ स.129

10 -धार पृष्ठ स.136

11 -धार पृष्ठ स.129

12 -पाँव तले की दूब पृष्ठ स.159

13 -पाँव तले की दूब पृष्ठ स. 14

14 -आदिवासी जीवन संघर्स और परिवर्तन की चुनौतिया पृष्ठ स.13 (abhishekas86@gmail.com www.debate online.in)

15 -पाँव तले की दूब पृष्ठ स. 14

16 -वही पृष्ठ स.31

17 -वही पृष्ठ स.24

4.1 आदिवासी विद्रोह के विविध रूप

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो भारत में आदिवासी विद्रोह का एक लम्बा इतिहास रहा है। ये विद्रोह जल, जंगल, जमीन व विस्थापन जैसे तमाम प्रश्नों को लेकर हुए। जब भी आदिवासियों को प्रताड़ित करने की साजिश की गई तब तब ये विद्रोह हुए "जनजातीय क्षेत्रों में उपनिवेशवादी व्यवस्था की स्थापना के विरुद्ध आदिवासियों के आंदोलन अनेक चरणों में हुए। पहले चरण (1795-1890) में आदिवासियों ने अपने क्षेत्रों में ब्रिटिश राज्य और शासन पद्धति थोपने के प्रयास का डट कर मुकाबला किया। इस आंदोलन में कुछ गैर आदिवासी जातियां भी शामिल हुई थी। ये आंदोलन स्वत: स्फूर्त दूरव्यापी एवं हिंसात्मक थे। इनमें मुख्य रूप से चुआड़ विद्रोह, चेरी विद्रोह, कोल और भूमिज विद्रोह तथा गोंडों और खोड़ों द्वारा प्रतिरोधात्मक संघर्ष थे।"[1]

भारत में आदिवासी विद्रोह का एक लंबा इतिहास रहा है, मुख्यत: अंग्रेजों के उपनिवेश स्थापित होने और उसके बाद आदिवासी क्षेत्रों, वनों की कटाई तथा उनके प्राकृतिक संसाधनों कोयला, खनिज आदि के दोहन से आदिवासियों में आक्रोश व्याप्त होता चला गया, यही आक्रोश की भावना रह-रहकर विद्रोहों में तब्दील होती गई।

"अग्रेजों द्वारा बड़े पैमाने पर प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की प्रक्रिया में अपनी जमीन और जंगल से आदिवासी की बेदखली और उनकी सामुदायिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व्यवस्था के नाश का जो सिलसिला शुरू हुआ था, वह अब तक जारी है। साम्राज्यवाद के खिलाफ आदिवासियों ने जबरदस्त लड़ाईयां भी लड़ी। इस दौरान

हजारों-हजार आदिवासी शहीद हुए। जाहिर था साम्राज्यवाद शोषण और गुलामी से आजादी के बाद निर्मित हो रहे भारतीय राष्ट्र में उनका हक किसी से कम नहीं था।"[2]

इन विद्रोहों का कारण काल और परिस्थितियों के हिसाब से अलग-अलग रहा है लेकिन जब भी आदिवासियों ने व्रिदोह किया तो किसी सत्ता की आकांक्षा में नहीं बल्कि जल, जंगल, जमीन एवं अपने समाज संस्कृति तथा अपनी अस्मिता को बचने के लिए ।

"आदिवासियों का पहला विद्रोह 1778 में बिहार में हुआ। बिहार में पहाड़िया जाति की तीन उपजातियां हैं- माल पहाड़िया, सोरिया पहाड़िया और पहाड़िया।18वीं सदी में अपने सरदारों के षड्यंत्र पूर्वक हत्याओं से ये हिंसक हो गए। इस कारण 1778 में अंग्रेजी शासन के खिलाफ उन्होंने विद्रोह किया।"[3]

1789 ई0 में तत्कालीन नियमों के अनुसार 'स्थाई बसाहट' के तहत खेती करने वालों को किराया, तय करने और निश्चित किराए के दर का अधिकार था, पर ईस्ट इंडिया कंपनी किराएदारों के अधिकारियों की सुरक्षा में असफल रही और जमींदारों का मनमाना रवैया जारी रहा, जिसके चलते छोटा नागपुर (झारखंड) में 'तमार' जनजाति ने विद्रोह किया। 1795-1800 के दौरान अंग्रेजों की, जिलों से राजस्व बटोरने की प्रक्रिया में छोटा नागपुर के जंगलों से राजस्व बटोरने के लिए सीमावर्ती बर्मा और सरगूजा से आक्रमणकारी आएं और उन्होंने वहाँ के मूल निवासियों के बीच लूटपाट की और डकैती डाली। इसके विरूद्ध 'चौरी' जनजाति के सरदारों ने विद्रोह किया। 1798 ई0 में 'पांचेत' राज्य बिक्री विद्रोह हुआ, बकाया राजस्व की वसूली के लिए पांचेत राज्य (बिहार) को बेच दिया गया, जिसके विरोध में भूमिज जनजाति हिंसक हो

गई और यह बिक्री रद्द करनी पड़ी। 1801 ई0 में तमार विद्रोह हुआ। जमींदारों को अत्याचार करने की छूट देने पर तमार जनजातियों द्वारा पुन: विद्रोह किया गया। 1803 ई0 में आंध्र प्रदेश के पूर्वी गोदावरी जिले के चोदावरम तालुका में रामभूपति (जिसे अब रेपा फितूरी के नाम से जाना जाता है।) के नेतृत्व में, रेपा क्षेत्र में अंग्रेजों द्वारा नियुक्त आदिवासी मुखिया के विरोध में कोमा जनजाति का विद्रोह हुआ। 1808 ई0 में छोटा नागपुर में आदिवासी विद्रोह हुआ, 1811, 1817 और 1820 ई0 में बिहार में भूमि को लेकर आदिवासी विद्रोह हुआ। 1818 ई0 में एक षड्यंत्र के बाद महाराष्ट्र में कोली जनजाति द्वारा विद्रोह हुआ। 1824 से 1826 के बीच आसाम पर बर्मा के कब्जे के विरूद्ध आसाम की सहायता की और फिर बर्मा को हटाने के बाद आसाम को हड़प लिया। 1825 ई0 में साडिया में सिंगफो जनजाति ने अंग्रजों के शस्त्रागार पर आक्रमण किया और आग लगा दी। सन 1828 ई0 का विद्रोह ऐतिहासिक महत्व रखता है। गोमधार कोन्वाट के नेतृत्व में आसाम की जनजातियों के द्वारा अंग्रेजों के विरूद्ध, जिसे ले. रदरफोर्ड ने पराजित किया। 1831-32 के बीच छोटा नागपुर में प्रधानों या राजाओं द्वारा अपनी ही शानों-शौकत के लिए दलालों की नियुक्ति की, जिन्होंने लूट शोषण और अत्याचार शुरू किया। इसके विरूद्ध गंगानारायण के नेतृत्व में कोलों द्वारा छोटा नागपुर में विद्रोह हुआ। विद्रोह का यह सिलसिला इसी तरह से आगे बढ़ता रहा और इसके क्षेत्र का आयाम बढ़ता रहा। 1820, 1832 और 1867 ई0 में बिहार के मुंडा समुदाय ने विदेशी प्रशासकों व दिकुओं की नियुक्ति से परंपरागत मुंडा संस्थाओं, परहा और पंचायतों का लगातार रण हुआ। दिकुओं द्वारा लगान वसूलने, दमन, शोषण व अत्याचार में बढ़ोत्तरी के विरोध में मुंडा जनजाति ने विद्रोह किया। आसाम में भी आदिवासियों के कई विद्रोह

हुए। 1839 ई0 में आसाम की सभी जनजातियां विदेशी आक्रमणकारियों के विरूद्ध उग्र हुई। 1939 ई0 में खामपी जनजाति ने एक अंग्रेज एजेंट एडम व्हाईट पर हमला करके 80 अन्य सिपाहियों और अफसरों को मार डाला। यह विद्रोह 1843 ई0 तक चला। 1855 ई0 में बिहार में संथालों का विद्राह हुआ। इसके मुख्य कारणों में गैर आदिवासी क्षेत्रों के साहुकारों और व्यापारियों द्वारा संथालों का शोषण शामिल है। इस विद्रोह का एक बड़ा कारण यह भी था कि-परंपरागत आदिवासी नियमों व व्यवहार के तहत सामुहिक आदिवासी जमीनों के ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा व्यक्तिगत संपत्ति में बदलने के लिए नए कानून का पास होना।

सन 1858 ई0 में गुजरात में भाऊ साहिब परिवार की साजिशों से तंग आकर एक पहाड़ी जनजाति सनखेड़ा नायिक दास ने जंबूघोड़ा में कैप्टन बेट्स की 8वीं रेजीमेंट की नंबर 1 टुकड़ी पर हमला किया। इस दो दिन के विद्रोह में अंग्रेजों को भारी क्षति हुई। आसाम के तौगांग जिले में फूलागुड़ी क्षेत्र में सन 1861 ई0 में आदिवासी किसानों का विद्रोह हुआ। इसका मुख्य कारण अफीम की खेती पर प्रतिबंध लगाना था। इसके साथ ही पान और सोपाड़ी की खेती से होने वाली आय पर टैक्स लगाने की अफवाहें थी। इस विद्रोह में एक कनिष्ठ सहायक आयुक्त को मारकर उसकी लाश को कालांग नदी में फेंक दिया गया। यह विद्रोह इतना भयानक हो गया था कि इसको काबू में लाने के लिए गुवाहाटी व तेजपुर से सेना बुलाई गई थी। सन 1862 ई0 में आंध्र एंजेसी में मुत्तादारों (छोटे आदिवासी जमींदारों) और उनकी सहायता करने वाले अंग्रेजों के विरूद्ध में कोया जनजाति के लोगों द्वारा यह विद्रोह किया गया। अंग्रेजों ने कोया जनजाति के परंपरागत संसाधनों जल, जंगल, जमीन, को मुत्तादारों की सहायता से हथियाने की कोशिश की, किंतु असफल रहें। 1880 के

आस-पास उड़ीसा के मल्कानगिरी में तम्मानडोरा के नेतृत्व में कोया जनजातियों के एक दल ने मल्कानगिरी तालुका के पोडिया पुलिस स्टेशन में घुसा और लड़ाई के बाद वहाँ आग लगा दी। 1889 में बिहार में हुए आदिवासी विद्रोह का भारतीय इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। बिहार में मुंडा नेताओं और जागीदारों, ठेकेदारों और अंग्रेजी शासन के खिलाफ, चिलकाड के एक बीस वर्षीय आदिवासी बिरसा मुंडा के नेतृत्व में मुंडा जाति का विद्रोह हुआ।

1850 ई0 में भारतीय उपमहाद्वीप के कई हिस्सों में आदिवासियों की भूमि व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही थी। इसका कारण बड़ी संख्या में बाहरी लोगों का वहाँ पहुँचना था। इनमें आस-पास के इलाकों के किसान थे, जिनको जमीन से प्यार था, बेइंतहा भूख थी और उनकी खेती के तरीके भी बेहतर थे। व्यावसायी और व्यापारी भी आये जिनकी योजना दूसरों की दौलत लूटने की थी उन आदिवासी इलाकों में भी अंग्रेज राज कायम होने के साथ गैर-आदिवासियों का आना तेजी से बढ़ने लगा। आदिवासियों ने इन घटनाओं का विरोध किया। उन्होंने बाहरी लोगों को उखाड़ फेंकने के लिए कई विद्रोह किये। भूमि व्यवस्था टूटने और इसाई धर्म के प्रसार की प्रतिक्रिया में आदिवासियों ने अपनी संस्कृति को पुनर्जीवन देने के लिए आंदोलन किये, जिनका विद्रोह और सांस्कृतिक पुनर्जीवन दोनों एक-दूसरे से घुलमिल गये। और इसकी की परिणति थी- उन्नीसवीं सदी का अंतिम मुंडा विद्रोह।

बिहार में रांची जिला और सिंहभूमि जिले का उत्तरी भाग मुंडाओं के इस विद्रोह का प्रमुख क्षेत्र रहा है। प्राचीन मुण्डारी भूमि व्यवस्था में किसी व्यक्ति या गुट विशेष के लिए कोई रियायत न थी, लेकिन मध्ययुग की सामंती व्यवस्था के प्रभाव में अलग-अलग भूमि की मल्कियत कायम हुई और यही मल्कियत ही अशांति का

मुख्य कारण बना। एक तरह से कहे तो अंग्रेजी शासन ने बहुत पहले ही भूमि संबंधी अशांति के बीज बो दिये थे। मुण्डा भूमि-व्यवस्था नष्ट करने के लिए कई बाहरी तत्व थे, जिनमें राजा और उसके संबंधी, जागीरदार और जमींदार, अंग्रेज शासक और स्थानीय छोटे अफसर आदि मुख्य थे। इसके अलावा कुछ आंतरिक कारण भी थे, जिनसे आदिवासियों को भारी मात्रा में क्षति उठानी पड़ी, जिसकी वजह से उनका जनजातीय संगठन टूट गया।

छोटा नागपुर (झारखण्ड) के आस-पास परंपरागत आदिवासी भूमि संबंधों में औपनिवेशिक काल में हुये भूमि बंदोबस्त के कारण आदिवासी जनजीवन काफी प्रभावित हुआ, जिसमें उन्नीसवीं सदी में तमाड़ और कोल विद्रोह के बाद दिकू जागीरदार, जमींदार और नये गुट के ठेकेदार जो काफी लोभी और लुटेरे थे, के आने के कारण तमाम गांवों की जमीनें आदिवासियों से हड़प ली गई।

1874 तक हालात इस कदर बदल चुके थे कि मुंडा और उरांव सरदारी का प्रभाव लभग ख़त्म हो चुका था। उनकी जगह अचानक प्रभावशाली बनने वालों में गैर आदिवासी किसान थे। थोड़ी बहुत जमीन वाले आदिवासी अब खेत मजदूर बन गये थे। बाहर से आये लोगों ने राजा या उसके रिश्तेदारों से प्राप्त जमीन के पट्टों के बल पर मुंडाओं और मानकियों को अपने शिकंजे में जकड़ लिया और क्रूर तरीकों से आदिवासियों को जमीनों से बेदखल कर दिया। राजा और उनके संबंधियों से पट्टे लिखाकर इन तिकड़मी भूस्वामियों ने भुंइहरी जमीन अपने कब्जे में कर ली। अदालतों में मानकियों और मुंडाओं के मौखिक बयान और अलिखित परंपराएं इन भूस्वामियों के दस्तावेजों से मार खा जाते थे। जज, मुंडा भूमि-प्रणाली और जमींदारी प्रथा के बीच का अंतर समझ नहीं पाते थे।

1863 तक लागू एक कानून के तहत जमींदारों को पुलिस के जैसे अधिकार प्राप्त हो गये थे, जिससे कई मुंडारी गांव पूरी तरह बरबाद हो गये, और रह गया उनका मात्र अवशेष, जो आदिवासियों पर जागीरदारों के जुल्म की कहानी को चीखकर बता रहा था।

दिकुओं ने आदिवासियों पर मालिकाना हक लादकर शोषण के नये तरीके अपनाये। पहले सामंती प्रधान द्वारा लागू चंदा एक मुश्त पूरे गांव से वसूला जाता था और अब हर मुंडा को अलग-अलग देना पड़ने लगा। इन क्षेत्रों में अंग्रेजों दिकुओं और आदिवासियों के बीच घृणा और विद्रोह का ऐसा संबंध बना जो अभी तक दिकूओं द्वारा जारी है।

"इसमें शक नहीं कि विद्रोह में दिकुओं के विरूद्ध मुंडाओं का आक्रोश इस विद्रोह की एक अंतर्धारा सा था। बिरसा द्वारा अपने मसीही उद्घोषों और आदिवासी धर्म के अन्य पहलुओं, उनकी प्रार्थनाओं और मंत्रों के पीछे भी भूमि-समस्या पर जोर दिये जाने का तथ्य था। विद्रोह की तैयारियों के सिलसिले में हुए विचार-विमर्श के दरम्यान भी आंदोलन का भूमि संबंधी पक्ष काम कर रहा था"।[4] बिरसा कभी-कभी दिकुओं के पास जाकर उनसे मुंडाओं पर अत्याचार न करने के लिए कहते थे और उनका विचार था कि अगर दिकू न मानेंगे तो उन्हें भी उनकी जमीनों से निकाल कर बाहर कर दिया जायेगा। इस प्रकार इस आंदोलन के मूल में भूमि समस्या थी। उसका तरीका हिंसापूर्ण था और उसका लक्ष्य राजनीति। बिरसा ने अपने भाषणों में मुंडाओं की भूमि समस्या पर जोर दिया और अपने लोगों की समस्याओं के लिए राजनीतिक निदान पेश किया। यानी एक नये राजा के अधीन बिरसा राज्य की स्थापना पर जोर दिया।

1911 ई0 में मध्यप्रदेश में बस्तर के आदिवासियों का विद्रोह हुआ, 1891 में बस्तर अंग्रेजों के कब्जे में आया। नए वन नियमों ने आदिवासियों को जंगल से वंचित कर दिया और बिसाहा (फसल का बीसवां) लेना शुरू किया। जब अंग्रेजों की महंगी प्रणाली से भी उन्हें न्याय नहीं मिला तो वहाँ के आदिवासियों ने विद्रोह कर दिया। 1913-1921 के बीच बिहार में ताना भगत विद्रोह हुआ। बिहार की ओरांव जनजाति के बीच इस शताब्दी की शुरुआत में एक नया धर्म ताना भगत शुरू हुआ। इसमें अध्यात्मिकता के साथ सामाजिक और आर्थिक तरक्की की संभावना वहाँ के ओराव लोगों को दिखी। इसकी शुरुआत छोटा नागपुर से हुई और यह शीघ्र ही रांची व हजारीबाग तक फैल गया। 1913 तथा 1914 में क्रमश: ताना भगत के अनुयायियों ने ढोकोटोली गांव में कुली की तरह काम करने से मना कर दिया जिसके कारण उन्हें जेल में बंद कर दिया गया। विद्रोह के उपजने के मूल में कहीं न कहीं बेगारी और जमीन थी। 1920 व 1921 में अपने शोषण के खिलाफ उन्होंने फिर विद्रोह किया। विद्रोहों का यह सिलसिला आगे बढ़ता रहा। 1922 ई0 में आंध्र एजेंसी में नरसीटनम से चिंतापल्ली तक सड़क बनाने के लिए कोया जनजाति के लोगों को बंधुआ मजदूर बनाने के विरोध में अल्लूरी श्री रामा राजू के नेतृत्व में कोया विद्रोह हुआ। 1941 में आंध्र प्रदेश में भीमू के नेतृत्व में आदिलाबाद में अंग्रेजों के खिलाफ गोंड व कोमल आदिवासियों का विद्रोह हुआ। 1942 ई0 में उड़ीसा में लक्ष्मण नायक का विद्रोह हुआ। उड़ीसा में जेयपुर से चालीस किलोमीटर दूर मैथाली के पुलिस स्टेशन पर, आदिवासियों के भीड़ पर पुलिस की गोलाबारी हुई। 1942-1945 के बीच अंडमान द्वीप समूह पर जापानी सेना के अधिकार का वहाँ के आदिवासियों द्वारा विद्रोह। 1963-1971 के बीच नागा विद्रोह हुआ और 1966-1971 के बीच मिजो विद्रोह हुआ।

1967-1971 के बीच नक्सलबाड़ी विद्रोह हुआ। आंध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम में जतापू और सवारा जिनकी जनसंख्या करीब 192,276 के आस पास है, आदिवासियों द्वारा वहाँ के चार आदिवासी तालूकों- पार्वतीपुरम, सालूर, पाटापट्नम और पालाकोंडा-में सशस्त्र विद्रोह हुआ, इसका नाम पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले के एक गांव नक्सलबाड़ी के नाम पर नक्सल आंदोलन रखा गया क्योंकि वहीं इसकी योजना चारु मजूमदार और कानू सान्याल ने बनाई थी। इसकी जड़ में इस क्षेत्र में साहूकारों का शोषण, भूमि सुधारों का असफल होना, वन अधिकारियों द्वारा आदिवासियों को सताया जाना जैसे प्रमुख कारण थे।

इस तरह भारत में आदिवासी अपने अस्तित्व और अधिकार तथा अपने जीवन यापन के संसाधनों- जल, जंगल, जमीन के लिए सदियों से लड़ते रहे, लेकिन अंग्रेजी साम्राज्यवाद, पूंजीवाद सरकार और उसकी नीतियां उनका शोषण करता रहा और आदिवासी विद्रोह होता रहा। आज भी आदिवासियों को बलपूर्वक हटाया जा रहा है, इस कारण आज भी आदिवासियों में आक्रोश दमन की प्रकिया की भावना भरी हुई है उपन्यास 'धार' और 'पाँव तले की दूब' में आदिवासियों के शोषण विद्रोह तथा शोषण को प्रमुखता के साथ उठाया गया है ।

संदर्भ सूची 4.1

1 - डॉ.कुमार सुरेश सिंह (बिरसा मुंडा और उनका आन्दोलन)पृष्ठ सं. .86

2 - समकालीन जनमत (आदिवासी प्रश्न वास्तविक लोकतान्त्रिक राष्ट्र के निर्माण का प्रश्न) पृष्ठ सं.5

3 - गुप्ता रमणिका, आदिवासी कौन? पृष्ठ सं.157

4 - डॉ.कुमार सुरेश सिंह, उलगुलान (बिरसा मुंडा और उनका आन्दोलन)पृष्ठ सं.88

4.2 स्त्रियों की भूमिका

परंपरागत आदिवासी सामाजिक व्यवस्था में महिलाएं मानकी मुंडा मांझी परगना भी हुआ करती थी। सत्ता संसाधनों पर महिलाओं का समान अधिकार तो था ही साथ ही जीवन के हर क्षेत्र में महिलाओं की निर्णायक भागादारी भी हुआ करती थी, लेकिन अंग्रेजी व्यवस्था ने महिलाओं के सत्ता संसाधनों के मालिकाना हक से दरकिनार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई साथ ही सामाजिक नवनिर्माण में वाह्य आरोपित प्रमुख व अति न्यून आंतरिक दव्न्दव्वों ने इनकी निर्णयक भूमिका को खत्म कर दिया। ऐसा इसलिए हुआ कि देवदासी समाज, आदिवासी समाज, पितृसत्तात्मक, सामंती शोषक व्यवस्था और उसकी संस्कृति से प्रभावित हो गया। सामुदायिक जीवन पद्धति और जीवन के हर मोर्चे पर स्त्री की साझेदारी, सहभागिता और साहचर्य वाला समाज ऐसा बदला कि परंपरागत आदिवासी गांवों में भी उन्हें बराबरी की संख्या में बैठने का अधिकार नहीं रह गया। इस समाज में भी स्वशासन, स्वावलंबन का सपना तभी साकार हो सकता है जब आधी आबादी (स्त्रियों) को हर मोर्चे पर हिस्सेदारी दी जाए।

संजीव का उपन्यास 'धार' आदिवासी स्त्रियों के यथार्थ रूप को दिखाता है। यह उपन्यास झारखंड के छोटानागपुर के सहारजोड़ी नामक स्थान को केंद्र में रखकर वहाँ के आदिवासियों की तमाम समस्या को सामने लाता है। कथा नायिका मैना जो आदिवासी नारी अस्मिता का प्रतीक है, इस क्षेत्र में हो रहे अमानवीय प्रथाओं, अत्याचारों के खिलाफ लड़ती है। अभी तक लोगों के मन में ऐसी धारणा बनी हुई है कि स्त्री पुरुष के बराबर कभी कार्य नहीं कर सकती, वह तन और मन से काफी कमजोर होती है। वह अपने शोषण के खिलाफ नहीं बोल सकती। इन सारे मिथकों को

'धार' की मैना तोड़ती है। वह पुरुषों से ज्यादा मजबूत और शक्तिशाली है। वह केवल अपने लिए नहीं बल्कि पूरे समाज के लिए लड़ती है। आदिवासी समाज की संरचना में स्त्रियों का योगदान पुरुषों से कई गुना ज्यादा रहा है। आदिवासी महिलाएं अपने समाज की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। इस संदर्भ में निर्मला पुतुल का मानना है कि-

"इस दुनिया में भी कई-कई दुनियाएं शामिल है। इन्हीं में से एक दुनिया आदिवासी औरतों की भी है, अन्य भारतीय समाजों की तरह आदिवासी समाज भी महिलाओं और पुरुषों की सहभागिता से बना है, लेकिन आदिवासी समाज की संरचना में पुरुष से कई गुना अधिक योगदान आदिवासी महिलाओं का रहा है, आदिवासी महिलाएं जो आदिवासी समाज की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, उन्हें खेत-खलिहान, जंगल पहाड़ ही नहीं, बल्कि शहर के हाट बाजारों में भी मेंहनत मजदूरी करते देखा जा सकता है।"[1]

उपन्यास 'धार' में मैना एक संघर्षशील स्त्री के रूप में आती है। उसका संघर्ष पुरुषों से कई गुना ज्यादा है। यह उपन्यास आदिवासी नारी अस्मिता के तमाम तथ्यों को उजागर करता है। माफिया महेन्दर बाबू आदिवासियों की जमीन को कब्जा के लिए मैना के पिता टेंगर को साधु, महात्मा कहकर उसकी जमीन को हड़प लेता है। इसका विरोध न ठीक से मैना का पति फोकल कर पाता है और न ही उसके समाज के अन्य लोग। मैना इसका विरोध करते-करते विद्रोही रूप में खुलकर सामने आती है। उसने जो संघर्ष झेला है वह नारी जिजीविषा को व्यक्त करता है। वहाँ एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"तो क्या हुआ, बाप तो सौंताल था, फिर मैना और उसकी मां दोनों ने ही तेजाब की फैक्टरी के खिलाफ लड़ाई लेकर जो सजाएँ भोगी उसका कोई मूल्य नहीं?"[2]

बड़े-बड़े पूंजीपतियों, माफियाओं के खिलाफ लड़ने वाली ये स्त्रियां ही वास्तव में हमारे आदिवासी समाज की रक्षक है। जल, जंगल, जमीन की रक्षा के लिए ये स्त्रियां आगे आई। बड़े-बड़े आंदोलनों में भाग लिया, उन्हें आगे बढ़ाया कथाकार संजीव ने भारतीय आदिवासी नारी के यथार्थ रूप को रखा है।

आदिवासी स्त्रियां अपने अधिकारों के लिए लड़ती है। भले ही उनको मारा-पीटा जाए, उनका विरोध किया जाए, इस संघर्ष को उपन्यास 'धार' प्रमुख रूप से उठाता है। वहीं महेन्दर बाबू जो आदिवासियों को बहला-फूसलाकर न मानने पर जान से मारकर फेंकवा देता है लेकिन एक आदिवासी स्त्री मैना के सामने घूटने टेक देता है। यह आदिवासी स्त्री दुनिया का सच है कि उनकी स्त्री पढ़ी-लिखी न होने के बावजूद अपने जल, जंगल, जमीन की रक्षा बलपूर्वक करती है। कथाकार माफिया महेन्दर बाबू की विवशता को स्पष्ट रूप में दिखाता है-

"महेन्दर बाबू ने ग्लास की आखिरी बूंद को घुटते हुए कहा मैं इस औरत के रहते इस इलाके में कोई भी काम नहीं कर सकता। ऐसी औरतें मैने नहीं देखी जो बाप और मर्द को दलाल कहकर छोड़ दे।"[3]

उपन्यास के माध्यम से कथाकार आदिवासी स्त्री के स्वाभिमानी रूप को दिखाता है मैना एक ऐसी आदिवासी स्त्री के रूप में हमारे सामने आती है जो भू माफियाओं, गुंडों, दलालों को कभी इज्जत नहीं देती। वहाँ तक कि उसका बाप टेंगर जो महेन्दर बाबू के जाल में फंस चुका है उसका विरोध करती है कि यह जमीन किसी भी तरह उनके हाथों में नहीं देनी चाहिए। जब लड़ते-लड़ते वह टूट जाती है तो अपने बाप को लात मारकर छोड़ देती है। उसका पहला पति फोकल भी आदिवासियों के खिलाफ हो जाता है क्योंकि महेन्दर बाबू उसे नौकरी का लालच देते हैं। मैना अपने

पति को भी छोड़ देती है लेकिन अपने संघर्ष और स्वाभिमान को नहीं गिरने देती है। स्त्रियों का संघर्ष ही मनुष्य को सही मार्ग पर ला सकता है। आदिवासी स्त्रियों का संघर्ष ही आदिवासियों की संस्कृति को जिंदा रख सका है। आदिवासी समाज में भी कई विरांगनाओं ने अपना बलिदान देकर अपने और अपने समाज के अस्तित्व की रक्षा की है। इसी तरह का एक उदाहरण यहाँ द्रष्यटव्य है-

"आज जब आदिवासियों के अस्तित्व और अस्मिता पर चारों ओर से हमला हो रहा है तब आदिवासी वीरांगनाओं के त्याग और संघर्षशील शक्ति को नकार कर, बेहतर झारखंड राज्य के निर्माण का संघर्ष नहीं चलाया जा सकता। यह भूलना नहीं चाहिए कि महिलाएं जल, जंगल और जमीन की रक्षा के लिए जान हथेली पर रखकर संघर्ष करती रही है।"[4]

आज आदिवासी समाज और उनकी स्त्रियों को ठीक से न समझने की वजह से ही उनके बारे में लोगों की गलत धारणाएं बनी है। मीडिया आदिवासी स्त्रियों को डायन, जादू-टोना करने वाली असभ्य एवं बर्बर के रूप में अब भी प्रस्तुत करती है जबकि हकीकत इससे अलग है। उपन्यास 'धार' आदिवासी समाज में फैले अंधविश्वास, जादू-टोने तथा डायन जैसी कुप्रथाओं की बहुत गहरे से पड़ताल करता है और समाज के सामने कुछ ऐसे तथ्यों को उजागर करता है जिनके चलते आदिवासियों में ये प्रथाएं आज भी जिंदा हैं। टेंगर की जमीन महेन्दर बाबू जब खरीदने की कोशिश करते हैं तो मैना की मां उसका विरोध करती है। पति-पत्नी दोनों में झगड़ा होता है। माफिया महेन्दर बाबू एक नीति के तहत आदिवासियों के बीच कुछ ऐसी अफवाहें फैलाती हैं जिससे मैना की मां को डायन घोषित कर दिया जाता

है। उपन्यास 'धार' आदिवासी समाज में गैर आदिवासियों द्वारा फैलाये गये ऐसे घोर अमानवीय कृत्यों की पड़ताल करता है।

यह उपन्यास आज के समसमायिक परिदृश्य में आदिवासी समाज की स्त्रियों की यथार्थ स्थिति से परिचय कराता है। जिस तरह से पुलिस और शासन व्यवस्था का कहर आदिवासी औरतों पर बरपाया जा रहा उसका संकेत कथाकार प्रारंभ में ही कर देता है कि किस तरह से घरों में, समाजों में एवं जेलों में आदिवासी स्त्रियों का शोषण हो रहा है। आदिवासी स्त्रियों के साथ हो रहे अमानवीय कृत्यों को कथाकार ने मैना के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की है-

"आपको विस्वास न होता हो तो जेल भी हम चलने को तैयार हैं, हुआं पूछ लेना। जेल में जेलर हमरा साथ जबर्दस्ती किया, उसी खातिर बच्चा मुँह पे मार के हम चला आया।"[5] आदिवासी समाज में स्त्रियां आज भी तमाम तरह के शोषणों का शिकार हैं। वे जितना अपने घरों में शोषित दमित हैं उससे अधिक घरों से बाहर भी। बार-बार पति-पत्नी में लड़ाई झगड़ा होना आम बात है। मैना का भी अपने पति फोकल से बार-बार लड़ाई के चलते ही संबंध विच्छेद हुआ, फिर भी आदिवासी स्त्रियां इन मामलों में गैर आदिवासी ग्रामीण समाज की स्त्रियों से काफी स्वतंत्र हैं। संजीव ने आदिवासी समाज में स्त्रियों की स्थिति को बहुत गहराई से पकड़ने की कोशिश की है। एक बार जेल भोग चुकी मैना, जब अपने साथ एक व्यक्ति (मंगर) को साथ लाती है तो अपने संथाली समाज में किस तरह रहना है गांव वाले निर्धारित कर देते हैं और उसे घृणा की नजर से देखते हैं। आदिवासी स्त्रियों के लिए दो कोर्ट का प्रावधान है, दोनों कोर्टों की सजा उसे भुगतनी पड़ती है। कथाकार इसका सूक्ष्म उल्लेख मैना के माध्यम से करता है-

"अभी तो हम एक कोरट का सजा भोग के आए न। अब ए दूसरा कोरट है- गाँव समाज का, जिसके बीच हमको रएना है।"[6]

आदिवासी समाज में स्त्रियाँ स्वतन्त्रता के मामले में अन्य स्त्रियों से आगे हैं। यदि ये स्त्रियाँ चाहें तो अपने पति को छोड़कर अन्य के साथ रह सकती हैं। के इनके यहाँ पति पर निर्भरता दूसरे समाजों की तरह नहीं होती। "तुमरा मन एक से नई भरा, दूसरा किया दूसरे से नई भरा तीसरा किया। अब नमूना बाबू को फँसा लाई है।"[7] आदिवासी जीवन में स्त्रियों के रहन-सहन, परिवेश, ग्रामीण व्यवस्थाओं आदि को इस उपन्यास में प्रमुख रूप से दिखाया गया है। यह उपन्यास उनके जीवन के तमाम पक्षों से साक्षात्कार करता है। घर-परिवार चलाने में स्त्रियों की क्या भूमिका होती है, स्त्रियां कितने संघर्षों तथा कितनी विद्रुपताओं के बावजूद अपने घर को संभालने तथा आर्थिक बदहाली के आलम में भी हिम्मत नहीं हारतीं।

आज ग्लोबलाइजेशन और पूंजीवादी के युग में सत्ता तथा मल्टीनेशनल कंपनियों द्वारा आदिवासी क्षेत्रों पर जबरन कब्जा किया जा रहा है। आदिवासियों को शासन द्वारा प्रताड़ित करके उन्हें विस्थापित किया जा रहा है। कोयलांचल क्षेत्र में दबंगों, माफियाओं गुंडों का वर्चस्व स्थापित है। चोरी से आदिवासियों द्वारा कोयला कटवाया जाता है पकड़े जाने पर सजा आदिवासियों को भुगतना पड़ता है। आदिवासी स्त्रियों पर उनकी निगाहें भी लगी रहती है।

"उपभोक्तावादी संस्कृति से प्रभावित होता आदिवासी समाज भी आदिवासी स्त्रियों की संघर्षशील चेतना एवं शक्ति को नकारता जा रहा है, जो बहुत दुखद पहलू है। स्त्री-पुरुष समानता की जमीनी हकीकत सिर्फ संघर्ष के मैदानों में दिखाई देती है।

सत्ता संसाधनों में स्त्री की बराबरी और उसके हक अधिकार की बात तो सिर्फ शब्दों तक ही सीमित है।"[8]

आदिवासी स्त्रियों की तमाम कमजोरियों के बावजूद, आदिवासी समाज की स्त्रियां काफी संघर्षशील रही हैं। कई तरह के अभावों में जीने के बावजूद उनकी चेतना को कुंद करने वाली शक्तियां असफल रहीं। इस उपन्यास में जिस स्त्री के चरित्र को सामने लाया गया है वह अपनों से जितना लड़ती है उतना ही अपने समाज से भी लड़ती है। तमाम पूंजीवादी, सत्तावादी शक्तियों के दबाव में भी वह अडिग रही, अपने और अपने समाज द्वारा तमाम प्रताड़नाओं के बावजूद भी वह हार नहीं मानती। इस तरह मैना का संघर्ष समूचे आदिवासी स्त्री का संघर्ष है। सत्ताधारी पूंजीवादी शक्तियों से लड़ते-लड़ते मैना समाज के लिए अपना बलिदान दे देती है। इससे अधिक ऊँचा आदर्श एक आदिवासी नारी के लिए क्या हो सकता है?

उपन्यास 'पांव तले की दूब' में गैर आदिवासी सुदीप्त द्वारा आदिवासियों की तमाम समस्याओं, जड़ताओं को दूर किया जाता है। उपन्यास की कथाभूमि झारखंड के छोटानागपुर का डोगरी अंचल है। सुदीप्त इन आदिवासियों के लिए लड़ते-लड़ते सत्ता, पूंजीतंत्र, माफिया और शीला के अप्रेम जैसे विरोधी तत्वों से आहत होकर घोर निराशा में आत्महत्या कर लेता है।

सुदीप्त के कार्यों को आगे बढ़ाने में माझी हड़ाम (आदिवासी) की बेटी जो पहले विकलांग हो गई थी, बाद में सुदीप्त द्वारा अस्पताल भेजने से ठीक हो गयी थी। उसके द्वारा आदिवासी समाज को आगे बढ़ाने की तरफ कथाकार संकेत करता है। वह आदिवासी समाज तथा स्त्रियों की समस्याओं को समाप्त करने का संकल्प लेती है। कथाकार वहाँ सूक्ष्म संकेत देकर आदिवासी स्त्री समाज में एक नई रोशनी का सूत्रपात

करता है कि पिछड़ेपन और कई समस्याओं से जुझते हुए भी आदिवासी स्त्री समाज की नई पीढ़ी अपने समाज के प्रति कितनी समर्पित है। आदिवासी समाज की लड़कियां अपने समय और समाज की समस्याओं को किस तरह से देखतीं है। कथाकार ने इसका संकेत दिया है। उपन्यास 'पांव तले की दूब' की दूसरी आदिवासी स्त्री, शीला केरकट्टा है। शीला सभ्य और शिक्षित होने के बावजूद आदिवासी स्त्रियों के लिए कुछ नहीं कर पाती बल्कि सुदीप्त के लिए आकर्षण का केंद्र मात्र रह जाती है जिसका कथाकार ने एक सूक्ष्म संकेत समीर के माध्यम से व्यक्त किया है-

"एक सवाल और शीला स्थूल रूप में सौ फिसदी सच्चाई भी है और एक प्रतीक भी। बहकी हुई आदिवासी अस्मिता की जो कालीचरण, गोपाल की नहीं, मुंडा ही नहीं, हंसदा मनीष और विजय तक के विचलन तक फैलती गई है।"[9]

'पांव तले की दूब' उपन्यास में कथाकार ने संकेत दिया है कि आदिवासी समाज में नई पीढ़ी की स्त्रियां अपने समाज की जड़ताओं को खत्म करने के लिए वचनबद्ध हैं। आदिवासी समाज में इसका संकेत उनके लोकगीतों में भी मिलता है-

"ओलोक पाड़ हाक जेल ते

आलो पे में ना नुई दो...।

इस गीत का अर्थ है कि हमको लिखना-पढ़ना देख के ई मत सोचो कि ई सिरिफ लिख-पढ़ सकता है और इसको धान रोपना नहीं आता। ऊ देखो धान, ऊ हमारे ही हाथ का रोपल धान लहलहा रहा है।"[10]

कथाकार ने सदियों-सदियों से शोषित आधी आबादी की पीड़ा को अभिव्यक्ति देने के साथ-साथ जीवन संघर्ष के संचित अनुभूति की जानकारी के आत्मस्वीकृति तथा कार्यान्वयन की लालसा को व्यंजित किया है।

उपन्यास समग्रत: सुदीप्त के माध्यम से आदिवासी समाज में मानवता के श्रेष्ठतम मूल्यों को रोपना चाहता है। उनके अंदर से ही संवेदनात्मक, ज्ञानात्मक जीवन उत्स खोजता है और कथा के अन्त में ग्रामोत्सव के माध्यम से आदिवासी स्त्री-पुरुष के लोक जीवन का आह्लाद, प्रेम व संघर्षोन्मुखी एकता, स्त्री-पुरुषों के सावयवी कर्म भविष्योन्मुखी सृजनात्मक यथार्थ की तरफ ले जाता है।

इस तरह उपन्यास 'धार' और 'पांव तले की दूब' आदिवासी समाज में फैले अंधविश्वास, शोषण दमन, अत्याचार के बीच बाह्य और आंतरिक दोनों कारणों से पिस रही आदिवासी स्त्री के सामाजिक अस्तित्व को मुखरता प्रदान करता है। आज के पितृसत्तामक पूंजीवादी समाज में अपनी अस्मिता के लिए कदम-कदम पर संघर्षशील आदिवासी स्त्री जीवन और सम्मान के लिए संघर्ष कर रही है

4.2 संदर्भ सूची

1 -समकालीन जनमत (संथाल औरतों की दुनिया का सच -निर्मला पुतुल)सितम्बर २००३ पृष्ठ सं.55

2 -धार ,संजीव पृष्ठ सं.36

3 -वही पृष्ठ सं.74

4 -समकालीन जनमत (आदिवासी :मिथ और यथार्थ) सि.२००३ पृष्ठ सं.55

5 -धार ,संजीव पृष्ठ सं.12

6 -वही पृष्ठ सं.15

7 -वही पृष्ठ सं.66

8- समकालीन जनमत (झारखण्ड के आदिवासियों का स्त्रियों संघर्ष -दयामनी बरला) पृष्ठ सं.53

9 -पाँव तले की दूब ,संजीव पृष्ठ सं.122

10 -वही पृष्ठ सं.125

4.3 आदिवासी प्रतिरोध और सत्ता पक्ष

आदिवासी समाज हमेशा स्वतंत्र समाज के रूप में रहा है। वे जिन इलाकों में रहते आये हैं, उन इलाकों को अपना स्वतंत्र राज्य जैसा समझते हैं, जहां वे अपनी मान्यताओं, प्रथाओं के अनुसार निश्चिंत होकर स्वच्छंद भाव से जीना चाहते हैं। अपने राज्य में किसी भी तरह के बाहरी हस्तक्षेप को वे अपने ऊपर शत्रु के हमले जैसा मानते हैं। पूंजीवाद के कारण जन्म लेने वाला 'ग्लोबल गांव' अपनी सार्वभौमिकता के तहत किसी भी स्वतंत्र या स्वायत्त सत्ता को स्वीकार नहीं करता। यही कारण है कि आधुनिक राज्य के साथ आदिवासी समाज का संबंध हमेंशा विरोधपूर्ण रहा। इसी विरोध के कारण आदिवासियों और सत्ता पक्ष में समय-समय पर संघर्ष होता रहा। इसी विरोध के कारण ही उन्होंने हथियार उठाकर बाहरी हस्तक्षेपकारी शक्तियों के खिलाफ विद्रोह किया। अंग्रेजों ने आदिवासी क्षेत्रों को कब्जा करने कोशिश की, अग्रेजों के खिलाफ आदिवासियों ने कई विद्रोह किए, प्रतिरोध और विद्रोह का यह क्रम आगे बढ़ता रहा, जो अब भी जारी है।

संजीव कृत 'धार' व 'पांव तले की दूब' इन्हीं आदिवासियों के अस्तित्व, संघर्ष तथा प्रतिरोध को लेकर सामने आता है। उपन्यास 'धार' की कथाभूमि बंगाल का सहारजोड़ी नामक स्थान है जो कोयला उत्खनन का प्रमुख क्षेत्र है। 'धार' उपन्यास यहाँ के आदिवासियों के प्रतिरोध को यथार्थ रूप में चित्रित करता है। आदिवासियों का

शोषण सत्ता पक्ष और उनका साथ देने वाले पूंजीपति, भूमाफिया, दलाल और प्रशासन किन-किन तरीकों से करते हैं, किस तरह सरकार आदिवासियों के बुद्धि कौशल से सुचारू रूप से चलायी जा रही खदान को बन्द करवा देती है और सत्ता पक्ष के लोग विरोध करने वालों को मरवा डालते हैं या उन्हें पैसों का लालच देकर अपने पक्ष में खड़ा का देते हैं तथा किस तरह कोयलांचल में कारखानों औद्योगिक संयन्त्रों के स्थापित होने का विरोध करने वाली औरतों को ओझाओं के द्वारा, माफिया लोग डायन घोषित करवाकर मारवा डालते हैं आदि इन तमाम तरह के प्रमुख मुददों व प्रश्नों को उपन्यास 'धार' व 'पांव तले की दूब' में कथाकार ने प्रमुखता से उठाया हैं। उपन्यास 'धार' में दो घटनाओं को प्रमुख रूप से उठाया गया है। पहला यह कि मजदूरों द्वारा स्थापित की गयी जनखदान को सरकार बन्द क्यों करवा देती है, यह खदान तो मजदूरों की सृजनशीलता और उनके अन्दर छुपे मौलिक गुणों की अभिव्यक्ति भी थी। दूसरा यह कि माफिया किस तरह से एक नीति के तहत मुख्य पात्र मैना के पिता टेंगर की जमीन हड़पते हैं और उस जमीन पर तेजाब की फैक्टरी लगाते है। सरकार और पूंजीपति दोनों मिलकर आदिवासियों का शोषण करते हैं। आदिवासी समाज प्राय: पढ़ा-लिखा नहीं होता है न ही उतना समझदार कि भूमाफियाओं और उनके साथ जी हजूरी करने वाले दलालों को समझ सके, आदिवासियों की जमीन खरीदने से पहले माफिया उनके क्षेत्रों का विकास करने व नौकरी और पैसों का लालच देते हैं। कथाकार भूमाफियाओं की ऐसी सभी नीतियों से परिचित है, इसी कारण उपन्यास 'धार' में इन सूक्ष्म बातों का यथार्थ रूप दिखाता है। महेन्दर बाबू आदिवासियों के प्रति सहानुभूति और हमदर्दी जताता है कथाकार मामा (पात्र) के माध्यम भूमाफियाओं का यथार्थ रूप प्रस्तुत करता है

"महेन्दरबाबू मैना के बाप के पास आये, बोले 'ऐसे तो सब भूखल-ए-मर जायेगा, आप जमीन का बन्दोबस्त करो तो हिंया एक ठो कारखाना लगा दे। टेंगर तो महात्मा आदमी, अपना सब जमीन दे दिया। एक-ई-महीने में तेजाब का फैटरी लग गया।"[1]

आज भूमाफिया, पूंजीवादी घुसपैठ तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियां सभी आदिवासी क्षेत्रों में दखल करके आदिवासियों को खत्म कर देना चाहते हैं। "आदिवासी व देशज समाज की बुनियाद में, पूंजीवाद, घुसपैठ, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आक्रमण और आधुनिकता, धर्मनिरपेक्षतावाद तथा राष्ट्र निर्माण की प्रक्रियाओं ने दुनिया के कई देशों में उनके अपरिवर्तनीय जातीय नरसंहार में योगदान दिया है।"[2]

आदिवासी क्षेत्रों पर भूमाफिया अपना अधिकार जमाने के लिए आदिवासियों को न केवल पैसे, नौकरी आदि का लालच देतें हैं बल्कि उनका गुणगान व महिमामंडन करके उनकी जमीन हड़प लेते हैं। टेंगर को भूमाफिया इसी तरह का लालच देते हैं। टेंगर को दानी महात्मा कहकर उसे सर्वश्रेष्ठ घोषित करके उसकी सारी जमीन हड़प लेते हैं। मैना की मां भूमाफियाओं का जब विरोध करती है तो भूमाफिया और पूंजीपति मिलकर उसे डायन घोषित करवाकर उसे मरवा डालते हैं। उपन्यास 'धार' सत्तापक्ष की इन कुरीतियों को उजागर करता है।

जब-जब आदिवासी प्रतिरोध करते हैं तब-तब सत्तापक्ष के लोग आदिवासियों को उखाड़ फेंकने की पूरी कोशिश करते हैं। उनके अपने ही आदमियों को किस तरह सत्तापक्ष के लोग मरवा डालते हैं या अपनी तरफ मिलाकर उनका शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, शोषण करते हैं, उपन्यास 'धार' समाज में हो रहे ऐसे अमानवीय कृत्यों को उजागर करता है। इस तरह सत्ता आदिवासियों के साथ साजिश

रचती है जिससे वे आपस में ही बिखरे रहतें हैं तथा उनका आपसी संबंध शत्रुता पूर्ण बना रहता है। सत्ता की इन तमाम साजिशों को यह उपन्यास बड़े बेबाकी के साथ प्रस्तुत करता है।

आदिवासियों को हर तरह से लूटा जा रहा है, उनके अधिकारों को छिना जा रहा है। सरकार और कारपोरेट घराने इनको आपश में लड़ा रहें हैं। उन्हीं लोगों के बीच के कुछ आदमियों को ये पैसे के बल पर खरीद लेते हैं ताकि उनके प्रति हिंसा और प्रतिरोध की भावना को आसानी से दबाया जा सके। भूमाफिया पहले टेंगर को खरीद लिए और उसकी जमीन को हड़प लिये। जमीन का विरोध करने वाली मैना की मां को डायन घोषित करवा कर मरवा डाले और मैना के पति फोकल को अपनी तरफ मिला लिये। इतना ही नहीं बल्कि टेंगर की मृत्यु के बाद उसका मन्दिर भी यह कहकर बनवा दिये कि टेंगर एक महात्मा था। उसने कुर्बानी देकर अपने लोगों तथा अपने समाज को एक नया रास्ता दिखाया है। कथाकार ने इन सभी तथ्यों की गहराई से पड़ताल की है।

आदिवासियों का शोषण कितने तरीकों से हो सकता है इन सभी तथ्यों को उपन्यास 'धार' में गहरी अभिव्यक्ति मिली है। आदिवासी इलाकों में तेजाब की फैक्टरी बन्द करने के लिए आंदोलन तेज हो रहे थे, उस आंदोलन के नेतृत्वकर्ता के रूप में शर्मा और मैना प्रमुख थें। आदिवासी अब इस बात पर जिद पकड़ चुके थे कि इस जहर की फैक्टरी को हम अपने इलाके में और नहीं चलने देंगे हमें अपनी जमीन की सलामती चाहिए खेती ही बच जाए यही बहुत है अब हमें मजदूरी नहीं, अपनी जमीन चाहिए।

इस तरह आदिवासियों का प्रतिरोध तेज होने से सत्ता और आदिवासियों में संघर्ष की स्थितियां बनने लगी। और सत्ता पक्ष के लोग आदिवासी समाज को भयानक परेशानी में डालने और उनके परंपरागत अधिकारों को छीननें का कुचक्र रचने लगे हैं। ये पूंजीपति, उद्योगपति, माफिया और दलाल ऊँची जाति वाले तो है ही इनकी असली शक्ति इनके पीछे इनको प्रोत्साहित करने वाली सत्ता है जो हर तरह से सहयोग देकर आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन हथियाने के लिए प्रोत्साहित कर रही है।

कभी पूंजीपतियों का विरोध करने वाले आदिवासी फोकल और मंगर आज उसी माफिया का गुणगान कर रहे हैं। उपन्यास में ऐसे सूक्ष्म तथ्यों का यथार्थ रूप प्रस्तुत करना संजीव जैसे कथाकार के लिए ही संभव था कि जो माफिया, आदिवासियों को कभी प्रताड़ित करता था आज जब सरकार उसे जेल में डाल रही है तो आदिवासी लोग ही उसके पक्ष में खड़े होकर सरकार का विरोध करने वालों में शामिल हो जाते हैं।

आदिवासी समाज अशिक्षित है जिसका पूरा लाभ उनके क्षेत्रों का अतिक्रमण करने वाले पूंजीपति उठा रहे हैं। समाज की इन विद्रुपताओं को कथाकार ने बड़े सहज ढंग से चित्रित किया है। मैना कहती है कि -

"तू काये गाया था बोल। वोई महेन्दर बाबू जो हमरा सब कुछ लूट लिया, तेरा सब हो गया।"[3]

उपन्यास 'धार' में जो दूसरी प्रमुख समस्या को उठाया गया है, वह आदिवासियों की जनखदान को लेकर। यह इस उपन्यास की सबसे प्रमुख त्रासदपूर्ण यथार्थ घटना है जिसे कथाकार ने सामाजिक और वैज्ञानिक रूप से परखा है। सरकार को बार-बार आदिवासियों द्वारा पत्र लिखा गया कि वे आकर हमारी जनखदान का

निरीक्षण करें और उसे अपने अधिकार में ले ले तथा हम लोगों को वहाँ स्थायी रूप से रख लिया जाय। बार-बार पत्र लिखने पर सरकार की तरफ से कुछ अधिकारी आये, उन्होंने 'जनखदान' का निरीक्षण किया तथा इतने सुचारु रूप से चलाई जाने वाली आदिवासियों की 'जनखदान' की काफी प्रशंसा की लेकिन सरकार द्वारा दिए गए निर्देश के अनुशार उन्होंने जनखदान की कई खामियों पर भी बल दिया, उपन्यास आदिवासियों पर हो रहे अन्याय व दमन का यथार्थ रूप समाज के सामने लाता है। आदिवासियों की जनखदान से महज आधा किलोमीटर की दूरी पर माफियाओं की एक 'इललीगल खान' भी थी। यहाँ से इललीगल माइनिंग का काम होता था, इस खान में आदिवासी मजदूर काम करते थे और पकड़े जाने पर इन्हें कोई नहीं छुड़ाता था पुलिस थाने ले जाकर इनसे पैसा मांगती थी, पैसा न देने पर इन्हें नक्सली घोषित करके इतना बेरहमी से पीटती थी कि हाथ पाँव सूज जाते थे। आदिवासियों के साथ हो रहे इन अमानवीय कृत्यों को उपन्यास 'धार' में गहरी अभिव्यक्ति मिली है।

माफियाओं की खदान को, सरकार क्यों नहीं बंद करवाती है। यह प्रश्न भी उपन्यास में प्रमुख रूप से उठाया गया है।

उपन्यास 'धार' माफियाओं, दबंगों, गुंडों के कुकृत्यों को सामने लाता है और यह संकेत देता है कि सरकार भले ही थोड़े दिन के लिए उनके द्वारा कराये जा रहे इललीगल माइनिंग को बंद कर देती है लेकिन सरकार के असली धरोहर तो वही लोग हैं, उन्हीं लोगों के सहारे ही सरकार चलती है।

आदिवासियों की खदान को सरकार कई अनायास कारणों को बताकर बंद करा देती है। और वहीं की इललेगल खदान को राष्ट्रीय खदान में तब्दील कर देती है। यह घटना पूरे भारतीय इतिहास की सबसे शर्मसार कर देने वाली घटना साबित होती है

जिसको कथाकार संजीव ने बड़े मार्मिक और रोचक ढंग से चित्रित किया हैं- "महेन्दर बावू और डोकानिया की इललेगल खदान के आगे इन्दिरा गांधी की मूर्ति लग गई और उसका नाम इंदिरा गांधी खदान कर दिया गया है...।"[4]

जिस अवैध खनन को सरकार द्वारा बंद कर देना चाहिए था उसी खदान को सरकार द्वारा पुरस्कृत और सम्मानित किया गया। अवैध खनन की खान को सरकार और सत्ता के लोगों ने राष्ट्रीयकृत करके 'इंदिरा गांधी जनकल्याण' खदान का नाम दिया। यह सत्ता और ठेकेदारों पूंजीपतियों की एक साजिश का परिणाम था। और जिस खदान को आदिवासी मजदूर अपने बुद्धि, विवेक और सुविचारित कौशल से चला रहे थे, जो अवैध भी नहीं थी इतना कुछ जानते हुए भी सरकार ने उसको नष्ट करवा दिया, भूमाफिया और उसके गिरोह में शामिल तमाम लोग यह अफवाहें फैला रहे थे कि सरकार जनखदान का राष्ट्रीयकरण करेगी लेकिन ऐसा एक भ्रम था। आदिवासियों को सहायता देने की बजाय सरकार उनकी खदानों को नष्ट कर देती है। इस कारण आदिवासियों में प्रतिरोध की भावना जागृत होती है, सरकार के इन काले कारनामों से त्रस्त होकर मैना का प्रतिरोध, संघर्ष में तब्दील हो जाता है। अपने जनखदान और अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए मैना अपने संघर्ष के साथ सामने आती है और उसे रोलर से दबा दिया जाता है इस तरह आदिवासियों की तमाम पीड़ाओं को यह उपन्यास गहरे अर्थों में उठाता है। आदिवासियों के साथ आज सत्ता पक्ष लगातार दुर्व्यवहार के साथ आ रहा है। और उन्हें प्रताड़ित कर रहा है, इससे आदिवासियों में लगातार प्रतिरोध की भावना जन्म ले रही है।

उपन्यास 'पांव तले की दूब' की कथाभूमि छोटानागपुर के पठारी इलाके का डोकरी अंचल है। सरकार वहाँ एन.टी.पी.सी. (नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन) को

स्थापित करती है। उपन्यास धार में सत्ता का विरोध एक संथाली आदिवासी औरत मैना के माध्यम से किया जाता है, वही आन्दोलन की कर्ता धर्ता है। जबकि 'पांव तले की दूब' उपन्यास में एक गैर आदिवासी ,आदिवासियों का नेतृत्व करता है, उनके अधिकारों उनके हक और उनके अस्तित्व की रक्षा के लिए सामने आता है। कभी आदिवासी आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाने वाली सरकार के खिलाफ लड़ने वाला सुदीप्त आज उसी आदिवासी डोकरी अंचल के एन.टी.पी.सी. (नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन) में इंजिनियर बनकर आता है। वह जनांदोलन से जुड़ा एक लेखक भी है। सुदीप्त इस अंचल की मानसिक जड़ता को दूर करने के लिए प्रतिबद्ध है। उपन्यास पांव तले की दूब आदिवासियों की तमाम समस्याओं अर्तद्वंदों और उनके प्रतिरोध को उजागर करता है। संजीव बेचैनियों के कथाकर है। वैयक्तिक से लेकर वैश्विक समस्याओं के कारण उपजी बेचैनियां उनकी रचनाओं का आघात बिंदु बनती है। संजीव के लिए बेचैनियो से ही सामाजिक परिवर्तन की संभावना बनती है। 'पांव तले की दूब' के संदर्भ में हंस पत्रिका का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है।

"पांव तले की दूब सदियों से शोषकों द्वारा रौंदी गई दूबों (आदिवासियों, दलितों) के चुभनदार कुशों में रूपांतरित होने की प्रक्रिया का आक्रोश भरी दास्तान है, यह उपन्यास।"[5]

आदिवासियों का विस्थापन, उनकी जमीनों और उनके संसाधनों पर कब्जा करने वाले सत्ता आदिवासियों को कितने तरह से प्रताड़ित कर रही है उपन्यास 'पांव तले की दूब' इसको सही अभिव्यक्ति प्रदान करता है। आदिवासियों की जमीनों पर बड़े-बड़े थर्मल कारपोरेशन या अन्य औद्योगिक संयंत्र लगाए जा रहे हैं जिससे वे विस्थापित हो रहे हैं। उनका वातावरण विषाक्त हो रहा है, कथाकार समीर और

सुदीप्त के वार्तालाप से आदिवासियों की यथार्थ स्थिति को दिखाता है सुदीप्त इन आदिवासियों की अस्मिता को बचाने का प्रयास करता है। वह उन्हें संगठित करता है। उन्हें क्रांति के लिए प्रेरित करता है। उनमें आत्मसम्मान व आत्मबोध को विकसित करता है। आदिवासियों पर वैश्विक ग्राम, विश्व व्यापीकरण और तीसरी दुनिया का व्यापक प्रभाव पड़ा है। आदिवासी क्षेत्रों पर पूंजीपति और सत्ता दोनों मिलकर अपना अधिकार जमाना चाहतें हैं उनको विकास के प्रलोभन देकर विस्थापित कर रहें है, जिससे उनकी जीवन शैली में काफी बदलाव आ रहा है।

"उनके संसाधनों के विश्वव्यापीकरण के उद्देश्य से विश्व बैंक अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और निजी पूंजीपति, तीसरी दुनिया के देशों की अर्थव्यवस्था में जबरदस्ती संरचनात्मक बदलाव कर रहे हैं।"[6]

आदिवासियों के लिए संघर्ष कर रहा सुदीप्त अपने प्राणों से खेलने को तत्पर रहता है उसके अंदर मानवीयता के गुण थे। सबको वह मुस्कुराता देखना चाहता था। इसीलिए वह उनके अधिकारों के लिए लड़ता रहा। सत्ता के लोग सुदीप्त को प्रताड़ित करनें में जुटे थे तथा सुदीप्त को बदनाम करने के लिए लोग तरह-तरह के हथकंडे अपना रहे थे। सुदीप्त को 'आदिवासी समर्थक' कहकर मजाक उड़ाते थे। हर कोई उसे शरारती नजरों से घूर-घूर के देखता था ताकि वह खुद पर शर्मसार रहे। यह उपन्यास झारखंड आंदोलन तथा वहाँ रहने वाली कई जातियों के संघर्ष और उनकी जीवन अस्मिता को यथार्थ रूप में दिखाता है। सुदीप्त के अथक परिश्रम से अब आदिवासियों में अपने अधिकार और अस्मिता की चेतना तथा आत्म सम्मान की भावना पैदा होती है तो आदिवासियों में सत्ता के प्रति प्रतिरोध की भावना बढ़ती है वे अब मरने-मिटने के लिए तैयार हो रहे हैं -"एक बार फिर वही उथलती भीड़, वही तीर धनुष, भाले,

गंडासे! तुम उन दिनों मुझे बताते न थकते थे कि विजय जी के चलते कितने लोगों को मुआवजे मिले।"[7]

यह उपन्यास आदिवासियों के जीवन संघर्ष तथा अस्मिता को लेकर समाज के समक्ष उनके संघर्ष करने की मूल कारणों को उजागर करता है। इस तथ्य को भी उजागर करता है कि जब तक हमें अपने अधिकार और अपने मूल संसाधन प्राप्त नहीं होंगे तब तक हमारा संघर्षजारी रहेगा। इस तरह आदिवासियों को न्याय दिलाने, उनके अधिकार दिलाने की अपेक्षा रखता है, उपन्यास 'पांव तले की दूब' कई प्रश्नों को हमारे सामने खड़ा करता है। पहला यह है कि एक आंदोलन में किसी आंदोलनधर्मी लेखक की क्या भूमिका हो सकती है। लेखक सुदीप्त अपनी सीमा के कारण सशक्त मोर्चों में शामिल न होकर आंदोलन के सांस्कृतिक मोर्चे को संभालता है। आदिवासियों की चेतना को जागृत करता है सुदीप्त आदिवासियों की तमाम कुरीतियों का विरोध करता है और उन्हें समझाने की कोशिश करता है कि ये ढोंगी जान गुरू (ओझा) पैसा कमाने के लिए करते रहते है। यह उन्हें स्वस्थ परंपरा से परिचित कराना चाहता था इसके लिए वह गीत नाटक इत्यादि लिखता है। सुदीप्त जिन आदिवासियों के अधिकारों के लिए लड़ता है, वही इसके खिलाफ हो जाते है वे यह भी नहीं समझ पाते है कि यह आदमी जो हमारे प्रति इतना समर्पित है हमारा दुश्मन कैसे हो सकता है। मगर यह सब सत्ता की चालें थी जिसमें सुदीप्त पिसता गया- "उस दिन भी तुम मेरे चलते पूरी तरह खुल नहीं पा रहें थे। आदिवासियों के अपमानित होकर चले जाने का पश्चाताप तो तुम्हारे मन में था ही .."[8]

इस तरह आदिवासी संस्कृति और हिन्दू संस्कृति के बीच की खाई को पाटने की बजाय शक्तिशाली, साम्प्रदायिक शक्तियां उन्हें तोड़ रही है उनके बीच प्रतिरोध पैदा कर रही है।

इस तरह एक ईमानदार व्यक्ति जो आदिवासियों के लिए लड़ रहा है, कितनी-कितनी दिक्कतों का सामना करता है पांव तले की दूब इसका यथार्थ दस्तावेज है। आफिस में नौकर के रूप में कार्यरत आदिवासी किस्कू अपने ही समर्थक सुदीप्त के खिलाफ हो जाता है। वह सुदीप्त को आन्तरिक रूप से नहीं समझ पाता है और अपने ही लोगों के कारण बगावत करता है। आन्दोलन का जो सच्चा वाहक होता है उसके मार्ग में किस किस तरह से मुसीबतें आती है। उपन्यास पांव तले की दूब इसका यथार्थ रूप प्रस्तुत करता है। इतना सब होने के बाद भी सुदीप्त पर एक अपमानित कर देने वाला कलंक लग जाता है। गोपाल कहता है- "एक बिच्छू डंक उठाये चलने लगा टेबुल पर। डंक में एक डोर बंधी थी जो गोपाल के हाथ में थी "[9]

इस तरह सुदीप्त एक के बाद एक उलझनों से घिरता गया, उसने अपने जीवन संघर्ष को एक नई दिशा देनी चाही मगर असफल। सुदीप्त को नौकरी के दौरान मानसिक उत्पीड़न का शिकार बनाया गया, कई तरह से उसे परेशान किया गया अन्ततः सुदीप्त के खिलाफ बर्खास्तगी के नारे लगने लगे और इन्हें बर्खास्त सिन्हा साहब की तरह मैं भी चला जाउंगा। जाना तो तय था ही। "दुख मुझे इस बात का नहीं, दुख का कारण कही और है और नितांत वैयाक्तिक कि जिस कहानी को लिखने के लिए मैं उम्र के पन्ने दर पन्ने खराब करता रहा, आज बंद करने की इस वेला तक उसका कोई नायक नहीं खड़ा कर पाया"[10]

यह केवल सुदीप्त के साथ ही, हो ऐसा नहीं है बल्कि उन क्षेत्रो में आदिवासियों के साथ करने वाले जो उन्हें मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास करते है सभी के साथ ऐसा होता है। उसे तरह तरह से मानसिक यंत्रणा प्रदान की जाती है।

इतना ही नहीं सुदीप्त अन्य कारणों से भी रहा, चाहे वह झारखण्ड आन्दोलन की बात हो या शीला जैसी आदिवासी लड़की के प्रेम की बात हो, तमाम सारी शक्तियां उसको तोडती है सुदीप्त शीला के प्रेम से आहत हो उठता है।

आदिवासियों के अधिकार के लिए लड़ने वाला सुदीप्त घर परिवार के तमाम संघर्षो से जुझता है वह अपने में भी सफल नहीं हो पाता, शीला द्वारा दूसरे व्यक्ति का हाथ थाम लेना उसे तोड़ कर रख देता है। सुदीप्त की डायरी के प्रारंभिक पन्नों पर कुछ कविताएं लिखी गई थी

“किसी आगवानी को खुले रहे नयन
बीत गए वर्ष-माह, हफ्ते, दिन रैन
झांक-झांक आंखों ने ओढ़ ली उदासी
पतझड़ के वन-वन में नीरवता व्यापी।”[11]

और आखिरी पृष्ठ पर यह अस्तित्ववादी दर्शन की सुक्तियां थी और सबसे अंत में महाभारत के स्त्री पर्व से भीष्म का एक उद्धरण था।

इस तरह सुदीप्त तरह-तरह से परेशान हो रहा था उधर झारखंड आंदोलन जिसका नेतृत्व भी सुदीप्त कर रहा था, जोड़ पकड़ता जा रहा था। इधर एक नेता डेनियल कुजूर ने सीधे-सीधे ललकार की अगर आदिवासियों को रोजी रोजगार पाना है तो ऐसे कारखाने में सिंह.तिवारी.सिन्हा जैसे सभी दिकूओं को मारकर खदेड़ दो। आदिवासियों का कहना था कि-

"यह धरती, हमारी धरती सोना उगलती है और उस सोने की धरती को हम कंगाल संतान हैं। प्रदेश की दो तिहाई आय हमसे होती है और हमारी हालत-न तन पर साबुत कपड़ा, न पेट में भरपेट भात, दवा दारु, पढ़ाई-लिखाई की बात छोड़ ही दीजिए। बहुत पैसा दिया सरकार ने। सरकार घोषनाएं करती नहीं थकती लेकिन हम कंगाल के कंगाल।"[12]

झारखंड की समस्याएं और उन समस्याओं को लेकर वहाँ आन्दोलन अपने चरम पर था, स्थितियों के बदलाव को लेकर काफी आक्रोशित थे, जनता सत्ता से मुक्ति चाहती थी। कथाकार ने इन सभी आतों को ध्यान में रखकर एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाता है कि क्या झारखण्ड राज्य बन जाने से सारी समस्यायें का समाधान हो जायेगा, आजादी मिल जाने से क्या भारत की सारी समस्यायें हल हो गयी वहाँ सुदीप्त के माध्यम से एक उदा. दृष्टव्य है-

"आप क्या समझते हैं, अलग झारखण्ड राज्य मिल जाने से मात्र से सारी समस्याएं हल हो जायेंगी। कहीं ऐसा तो नहीं कि भारती आजादी की तरह स्वार्थी शोषक तत्व, कुलक और शिक्षित वर्ग आगे बढ़कर उसका लाभ हथिया ले जायेगा। ये दिन-हिन लोगा जस के तस पड़े रह जायेंगे। अलग-अलग निहित स्वार्थ के तत्वों पर आपका अंकुश है?"[13]

सुदीप्त एक तरफ झारखंड आंदोलन को नई दिशा देना चाहता है और आदिवासियों की समस्याओं को तरह तरह से सुलझाने का प्रयास करता है। वहीं दूसरी ओर कंपनी की तरफ से उसे धमकियां मिलती है। उसे अनेक तरह से मानसिक प्रताड़ना दी जाती है। इससे सुदीप्त आहत हो जाता है। सुदीप्त उन आरोपों को

खारिज करता है लेकिन उस पर लगातार सत्ता द्वारा एक साजिश के तहत प्रताड़ित किया जाता रहा-

"मुझे मंत्रालय का एक गोपनीय पत्र मिला। पत्र क्या था? खुले तौर पर धमकी थी कि मेंरे कार्य काल में उत्पादन को निर्धारित लक्ष्य चार सौ पचास मेंगावाट से घटकर दो सौ पंद्रह मेंगावाट तक आ गया था, कि इस अवधि में श्रमिक असंतोष और अनुशासनहीं नता में रिकॉर्ड वृद्धि हुई।"[14]

इस तरह सत्ता पक्ष के लोग मिलकर सुदीप्त को बर्खास्त करा देते हैं। घनघोर निराशा और दृष्टिभ्रम का शिकार हुआ सुदीप्त मानसिक संतुलन खोने लगता है। आंदोलन की बागडोर माडी हड़ाम के हाथों में आ जाती है जो एक आदिवासी नेता है। मांझी हडाम के हाथों में आकर आंदोलन अपनी तूल पकड़ता है।

आंदोलन का जो सच्चा वाहक होता है उसके मार्ग में किस-किस तरह से मुसीबतें आती है उपन्यास 'पांव तले की दूब' इसका यथार्थ रूप प्रस्तुत करता है। जिसके लिए सुदीप्त लड़ रहा है, वही लोग उसके खिलाफ आते हैं। उपन्यास 'धार' में मैना के साथ भी ऐसा ही होता है। मैना 'सत्ता सरकार, पूंजीपतियों, माफियाओं, दलालों तथा अपनों से लड़ते-लड़ते मर जाती है। सुदीप्त भी लड़ते-लडते घोर निराशा व अंधकार में डूबकर आत्महत्या कर लेता है। सुदीप्त कई शक्तियों से एक साथ लड़ता है। जब आदिवासियों के अस्तित्व के लिए सुदीप्त लड़ाई लड़ता है तो आदिवासियों द्वारा ही तिरस्कृत तथा अपमानित किया जाता है। उसका प्रयोग भी जो असफल हो जाता है। संक्षेप में कहे तो सुदीप्त का आंदोलन कर्मी के रूप में असफल होना उसके आदिवासियों पर किए प्रयोगों का असफल होना शीला द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति का हाथ थाम लेना, नौकरी से निकाला जाना, जिन आदिवासियों के लिए वह काम कर

रहा था, उन्हीं द्वारा तिरस्कृत होना, अपमानित होना, परिवार मित्र मंडली तथा समाज की उपेक्षा, पार्टी के अंदर तथा पार्टी के बाहर विपरीत परिस्थितियों के कारण तंग बदहाल हो जाना आदि ऐसे कुछ प्रमुख कारण थे जिनके चलते सुदीप्त घोर निराशा से ग्रसित हो जाता है और अंतत: आत्महत्या कर लेता है। कथाकार समीर के माध्यम से इस घटना को दृष्टिगत करता है-

"यह क्या? यह तो एक नर कंकाल है। मैं हकला उठा, 'कौन?' यहीं है आपके सुदीप्तमैं काठ हो गया। कितनी भयानक बात थी। वह सीधे मेंरे सर पर था। इतनी देर में"[15]

इस तरह सुदीप्त की मौत में झिया गांव वालों को कलह देती है। सुदीप्त ने आदिवासी गांव के लिए जो विकास किए थे, जो क्रांति के बीज बोए थे, वे जन्म ले रहे थे। उसको निराश होने की जरूरत ही नहीं थी। सुदीप्त ने उन क्षेत्रों को जागरूक किया और विकास के तमाम पहलुओं को साकार किया था।

कथाकार मांझी हड़ाम के आए एक पत्र से तथ्य को उजागर करता है-

"श्री मान बिजली साहब को मेंझिया वालों का प्रणाम। हमसे बिना बताए आप कहां चले गए कि हम खोज-खोज के हैरान रह गये। मेंझिया वाले आपको कितना याद करते हैं।

आपका बाप समान

मांझी हडाम, मेंझिया"[16]

सुदीप्त अपने को पूरी तरह से आदिवासियों के प्रति समर्पित कर देता है। वह उन्हें स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराता है, वृक्ष लगवाता है, उनके बीच चेतना को फैलाता है। छाई के लिए मशीन लगवाता है, नाले के गंदे पानी को साफ करने का

इंतजाम करता है, बांध बनाने के लिए पैसा दिलवाता है। तमाम संघर्षों के बावजूद उनके गांव में बिजली की समूचित व्यवस्था करता है। उस गांव के लोग सुदीप्त को देवता सममझते थे। आदिवासियों के लिए समर्पित सुदीप्त अपनी जान दे देता है।

संन्दर्भ सूची 4.3

1 - संजीव, धार, पृष्ठ सं. 19

2- स. तपन बोस, देशज कौन ?आदिवासी कौन? पृष्ठ सं. 46

3- संजीव, धार, पृष्ठ सं. 126

4- वही, पृष्ठ सं. 201

5- हंस पत्रिका (परख-मनोज) जून 1997, पृष्ठ सं. 79

6- संजीव,पाँव तले की दूब, पृष्ठ सं. 24

7- वही, पृष्ठ सं.18

8- वही पृष्ठ सं. 40

9- वही पृष्ठ सं. 107

10- वही पृष्ठ सं.108

11-वही पृष्ठ सं.115

12- वही पृष्ठ सं. 93-

13- वही पृष्ठ सं.73

14- वही पृष्ठ सं. 104

15- वही पृष्ठ सं. 115

16- वही पृष्ठ सं. 118-119

5.'धार' और 'पांव तले की दूब' उपन्यास का शिल्प विधान

साहित्य मानवीय संवेदनाओं, भावनाओं एवं विचारों को अभियक्त करने का एक सशक्त माध्यम है। किसी भी भावना, विचार या सिद्धांत को केवल भाषाबद्ध कर देने मात्र से उसे साहित्य की संज्ञा प्राप्त नहीं होती है। साहित्यकार भावों और विचारों का ही प्रदर्शन नहीं करता, बल्कि उसे कलात्मक रूप भी देता है। रोचकता, आकर्षण और चिर प्रभाव के निर्माण के लिए साहित्यकार शिल्प की सृष्टि करता है। साहित्य विविध विधाओं व विविध रूपों में देखने को मिलता है। शिल्प का विकास साहित्य के विविध अंगों के विकास के साथ-साथ बहुत धीरे-धीरे होता है। यह विकास प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकारों द्वारा समय-समय पर अपने सतत परिश्रम और प्रयोग द्वारा हुआ है। अपने परीक्षण अन्वेषण और विभिन्न प्रयोगों के द्वारा शिल्प सम्बन्धित मान्यताओं को साहित्यकार पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते आए हैं।

"कलात्मक कार्यवाही की रीति जो संगीत अथवा चित्रकला में प्राप्त होती है तथा कलात्मक कारीगरी"। इससे मिलती-जुलती परिभाषा 'हिंदी कोश' में इस प्रकार दी गई है। "शिल्प से अभिप्राय हाथ से कोई वस्तु तैयार करने अथवा दस्तकारी या कारीगरी से है।"[1]

शिल्प का तात्विक विवेचन स्पष्ट कर देता है कि शिल्प का महत्व मनोवेगों और भावों को स्पष्ट आकार देने में सहायक सिद्ध होता है। अच्छी रूपविधा या शिल्पविधा वह है जो सही वस्तु को सही समय, सही परिप्रेक्ष्य में उचित ढंग से प्रस्तुत करे। इसके लिए उचित विषय का चुनाव अनिवार्य है। अपने विषय की

अभिव्यक्ति के आवश्यकतानुसार उपन्यासकार नई-नई शिल्पविधियों का प्रयोग करता है जो उसके भिन्न-भिन्न कोणों से देखने की दृष्टि को स्पष्ट करने में सहायक होती है। वस्तुत: शिल्प विधि का निर्धारण मुख्यत: उपन्यासकार की दृष्टि अथवा दृष्टिकोण पर ही निर्भर होता है। इस संबंध में पर्सी लुकव का यह कथन उल्लेखनीय है-

"उपन्यास कला की शिल्प विधि या कारीगरी की जटिलता का निर्धारण मूलत: कथाकार के दृष्टिकोण पर ही निर्भर होता है। कथाकार का कथा के साथ जो संबंध होता है, वही आखिर में उपन्यास का शिल्प निर्धारण करता है।"[2] इसलिए उपन्यास शिल्प विधि में दृष्टिकोण ही महत्वपूर्ण होता है। दृष्टिकोण के महत्व को स्वीकारते हुए भी उसके आधार पर हम वस्तु, तत्व या उपन्यास के किसी अन्य तत्व की अवहेलना नहीं कर सकते। विषयवस्तु को भी शिल्प के समतुल्य होना चाहिए। वस्तु तत्व के अंतर्गत कथावस्तु, मुख्य कथानक, प्रासंगिक कथा, अन्तर्कथा तथा विभिन्न घटनाएं आती हैं, लेकिन शिल्प, वस्तु तत्व से कहीं अधिक समृद्ध होता है। क्योंकि उसके अंतर्गत वस्तु संगठन योजना चरित्रांकन विधि, संवाद परिकल्पना, वातावरण नियोजन विचार-संचालन तथा भाषा और शैली जैसे तत्व नियोजित होते हैं। रुचि भी इसमें अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अपनी रूचि एवं संस्कार के अनुरूप उपन्यासकार कथा का सृजन करता है।

किसी भी उपन्यासकार के सामने मुख्य रूप से दो प्रश्न महत्वपूर्ण होते हैं- एक स्वयं की रुचि का और दूसरा पाठक की रूचि का। इन दोनों का समन्वय स्थापित करके कथाकार सृजन कार्य को आगे बढ़ाता है और उसमें जीवन्तता प्रदान करता है। प्रेमचंद से पहले के उपन्यासकार लोक रुचि अथवा पाठक रुचि का अधिक ध्यान रखते थे। अत: उनके उपन्यासों में लोक रुचि के अनुरुप शिल्प का गठन हुआ। इनमें घटना

वैचित्र्य, आकर्षण संवाद, घुमावदार वातावरण ही प्रधान रहता था। पाठकों का मनोरंजन ही उनका प्रमुख उद्देश्य था।

प्रेमचंद ने इस शिल्प को संकुचित मानकर मनोरंजन से अधिक चारित्रिक महत्व की बात की। वे उपन्यास को मानव मात्र के मनोरंजन का साधन न मानकर, मानव चरित्र का उद्‌घाटक मानते थे, इससे उनके औपन्यासिक शिल्प में बड़ा परिवर्तन आया। वे उपन्यास को तिलस्म, जासूसी, उछलकूद और भावलोक की रंगीली दुनिया से खींचकर, यथार्थ परिस्थितियों, मध्यवर्ग और चेतन मन की व्यापक भावनाओं के धरातल पर लाये। प्रेमचंद ने सामाजिक समस्याओं और पात्रों के चित्रण में अपने औपन्यासिक शिल्प का परिवेश बांधा तथा उनके परवर्ती मनोवैज्ञानिक रुचि के कथाकारों ने वैयक्तिक विश्लेषण पर अधिक बल दिया। कुछ उपन्यासकारों ने स्वप्न दृष्टा बनकर प्रतीकात्मक शिल्प को अपनाया।

इस तरह शिल्प ही वह साधन है, जिसके द्‌वारा उपन्यासकार अपने विषय की खोज, जाँच, पड़ताल और विकास करता है। इस विशाल जीवन और जगत में कथाकार जो मानव सत्य और मान्यताओं का अन्वेषक है, बहुत छोटा होता है। उसकी अपनी सीमाएं होती है, संस्कार होते हैं और उनका दृष्टीकोण भी स्वतंत्र होता है, जिसके सहारे वह अपने औपन्यासिक शिल्प की रचना करता है। इस प्रकार शिल्प, उपन्यासकार की रुचि, पाठक की मांग, समय की आवश्यकता में संतुलन स्थापित करने का माध्यम है। शिल्पगत परिपक्वता प्राप्त करने के लिए कथाकार अंधविश्वासों, थोथी, मान्यताओं, अर्धविकसित और हानिप्रद रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करता है और उस माध्यम को प्रश्रय देता है जो लोकमंगलकारी और व्यक्ति चेतना को उद्‌घाटित करता है।

उपन्यास और उसका शिल्प

उपन्यास मानव जीवन की मीमांसा है, वह मानव मन की आन्तरिक अनुभूतियों का विश्लेषण करता है। उपन्यास व्यक्ति को केन्द्र में रखकर उसके विकास में सहायक, संपूर्ण वातावरण, समाज और देशकाल का चित्रण करता है। उपन्यास आधुनिक जीवन की सबलतम अभिव्यक्ति का उत्कृष्ट माध्यम है। किसी साहित्यिक कृति को साहित्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए उस विधा की कसौटियों पर खरा उतरना पड़ता है। इस कसौटी के आधारभूत तत्व-स्वरूप और लक्ष्य होते हैं। स्वरूप का तात्पर्य वाह्य आकार-प्रकार से होता है जबकि लक्ष्य का तात्पर्य कृति की आन्तरिक प्रकृति से होता है। कृति को साकार रूप देने में जिन विधियों, ढंगों, तरीकों और रूढ़ियों का प्रयोग किया जाता है सामान्यत; वे सारी बातें शिल्प के अंतर्गत आती है। उपन्यासकार अपने मनोभावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए जिन साधनों, उपायों, का सहारा या आधार लेता है, वही शिल्प है। उपन्यासकार जैनेन्द्र का कहना है कि-

"टेकनिक ढाँचे के नियमों का नाम है। पर ढाँचे की जानकारी उपयोगिता में है कि वह मनुष्य के जीवन में काम आए। वैसे ही, टेकनिक साहित्य सृजन में योगदान के लिए है।[3]"

हिंदी उपन्यास साहित्य के समकालीन उपन्यासकारों में संजीव का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिकता का स्थान अधिक महत्वपूर्ण था, जबकि समकालीन उपन्यासों में भोगे हुए यथार्थ को महत्व प्राप्त है। संजीव ने अपने उपन्यासों में स्वयं के देखे, भोगे और अनुभव किए समाज को उसकी पूर्णता में अभिव्यक्त प्रदान करने का प्रयास किया है। संजीव प्रगतिशील विचारधारा के पक्ष में

खड़े होकर, हाशिए के समाज को केंद्र में स्थापित करते हैं और उन्हें मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास करते हैं।

संजीव यथार्थ प्रतिपादन के प्रति प्रारंभ से ही आग्रही रहे। अपनी इसी प्रवृत्ति को उन्होंने साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की।

अपने अंदर की तड़प, छटपटाहट और बेचैनी को उन्होंने धार व पाँव तले की दूब जैसे उपन्यासों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। इसमें उनकी प्रगतिशील विचारधारा स्पष्ट रूप दिखाई देती है। उन्होंने सामाजिक और यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाकर समाज में मुख्यधारा से कटे हुए साधन विहीन लोगों को समाज व मुख्य धारा से जोड़ने का काम किया। कितना जोड़ पाए यह एक अलग बहस का मुद्दा है, लेकिन उनकी स्थितियों से तो संजीव का रचना संसार हमें रुबरु कराता ही है।

'धार' उपन्यास अपने अनूठे शिल्प के कारण हिंदी उपन्यास साहित्य में चर्चित रहा है। कथा में आशयगत समृद्धता होने के बावजूद केवल कथा संगठन में बिखराव होने के कारण इस उपन्यास में थोड़ा सा बिखराव दिखाई पड़ता है। यह विश्वास पात्रों की भीड़ और घटना वैविध्य के कारण आया हुआ है।

"धार में संजीव ने भाषा के एक और रूप को अपनाया है और इतनी दूर तक अपनाया है कि इसे उनके द्वारा भाषा का एक खास प्रयोग कह सकते हैं। सिर्फ कलकत्ता, बम्बई में ही नहीं बल्कि और भी गैर हिंदी भाषी इलाकों में खासकर इसके औद्योगिक क्षेत्रों में जहां देश के विभिन्न प्रांतों से आए लोग रहते हैं और स्थानीय निवासियों की भाषा हिंदी नहीं होती- वहाँ अक्सर हिंदी का एक नया बना हुआ रूप चलता है। छोटानागपुर संथाल परगना के औद्योगिक अंचलों में भी इस तरह की हिंदी चलती है, जिसमें हिंदी व्याकरण के सभी नियमों का पालन नहीं होता, न ही ध्वनियों

का सही उच्चारण होता है। इसमें न कर्ता के 'ने' चिन्ह का प्रयोग होता है, न ही स्त्रीलिंग-पुल्लिंग का भेद चलता है। जैसे- बाप बोला था, माँ बोला था इत्यादि।"[4] कथाकार संजीव अपने उपन्यासों में एक मिली- जुली भाषा का प्रयोग करते हैं डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने इसी हिंदी को "भारत की आम जनता की हिन्दुस्तानी, भारत की वास्तविक राष्ट्रभाषा हाट-बाजार की बाजारु हिंदी आदि कहते हुए दावा किया था कि इसका व्याकरण सिर्फ एक पोस्टकार्ड पर लिखा जा सकता है।"[5] संजीव के पात्र भी कुछ इसी ढंग की भाषा (या स्थानीय बोली) का प्रयोग करते हैं। जैसे, "का करें? हम पूछता आप ले कायें आया?"[6]

"हुआ पूछ लेना। जेल में जेलर हमरा साथ जबर्दस्ती किया उसी खातिर बच्चा इसका मुँह पर पे मार के हम चला आया, लेकिन आप हमारा सारा खेल गड़बड़ कर दिया।"[7]

"हम भौत रोका अपने को भौत। लेकिन का करेगा, हम माँ हैं न।"[8]

"काहे मरद औरत को छोड़ सकता और औरत मरद को नई छोड़ सकता?"

बोल रे, बोलता काहे नई माँ आया है।"[9]

'धार' उपन्यास के लगभग सभी आदिवासी एवं स्थानीय पात्र शुरू से अन्त तक इसी भाषा में बोलते हैं। इसके कारण उपन्यास को पढ़ने की गति धीमी पड़ जाती है, लेकिन उपन्यास अपने परिवेश को यथार्थ रूप से व्यक्त करने की संपूर्ण कला को अपने में समें टे हुए है। संजीव ने स्थानीय पात्रों से जो भाषा बुलवाई है वह अपने परिवेश, देशकाल, वातावरण के लिहाज से सटीक लगती है। उपन्यास धार में कथाकार ने आदिवासियों के परिवेश को चित्रित किया है इसलिए उसकी भाषा भी उन्हीं के अनुरूप है। चूँकि कथाकार का काफी समय बंगाल में बीता है, अत: वहाँ की भाषा का

प्रयोग भी दिखाई पड़ता है। उपन्यास में लेखक कुछ-कुछ जगह, "स की जगह श लिखता है- रस्मी की जगह रश्मी "(पृ.- 80) यह बंगाल का असर है। उपन्यास में आदिवासी और स्थानीय पात्र लिंगभेद नहीं करते और सभी को पुलिंग बनाते हैं। कई जगह लेखक अपने पात्रों की इस विशेषता को भूल जाता है। उपन्यास के पात्र मामा कहते हैं- मालूम है, कल पालाजोरी में गोली चली है, कितने मरे, कोई ठिकाना नहीं। फोकल कहता है- जनाना की भीख का अन्न खाने चले आये? यहाँ पात्र लिंग का भी ध्यान रखते हैं और वचन का भी। संजीव ने स्थान को ध्यान में रखकर अपनी भाषा को जीवंतता प्रदान की है, लेखक कई जगह 'ही' की जगह 'ई' का प्रयोग किया है। जैसे- सूझता ही नहीं, की जगह पर सूझता-ई-नई खूने-खून की जगह वे खून-ई-खून शब्द का चयन करता हैं, जिस संस्कृति की बात कथाकार करता है, उन्हीं के बीच के, उन्हीं के आम बोल-चाल के शब्दों को उपन्यास में प्रयोग भी करता है, जो उपन्यास को और अधिक पुष्ट करता है। कथाकार ने भाषा और संस्कृति को ठीक से समझा था, उसका निष्ठापूर्वक अनुसरण किया, इस उपन्यास में स्थानीय बोली को संजीव ने महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

संजीव की भाषा पर गहरी पकड़ है। इसका संकेत उपन्यास की पहली पंक्ति में ही दिखाई देता है। यहाँ अत्यन्त सघन बिम्बात्मक भाषा का प्रयोग दिखाई देता है जो संपूर्ण चित्र उपस्थिति कर देने में समर्थ है। "जेल का जबड़ा थोड़ा खुला, और रिहा होने वाले कैदियों को उगलकर फिर बंद हो गया **(धार पृ.-9)** संजीव की भाषा में हमें नए-नए प्रयोग मिलते हैं, मंगर का सवाल बिल्ली की तरह पीछे हटते हुए अपने प्रतिद्वंदियों पर घात लगा रहा था। **(पृ.-21)**, अँधेरा बिल्ली सा झपटता है" (**पृ.-15**) और संथाल परगना का पूरा नंगा इलाका घायल गुर्राते सूअर की तरह पड़ा था"

(धारपृ.-41)। इन पंक्तियों की भाषा में एक जैसी विशेषता और नए नए रूप दिखाई पड़ते हैं। ऐसी पंक्तियां और भी हैं। जैसे- "जेल में राहत की सांस ली गई" कहने की जगह "जेल ने राहत की सांस ली।" **(पृ.-10)** इतना ही नहीं बल्कि **(पृ.सं. 46)** का पूरा पैराग्राफ इसी तरह की भाषा में है।

इस संदर्भ में **वीर भारत तलवार का मानना है कि** "कथा में गद्य की यह भाषा भारतेंदु और प्रेमचंद की परंपरा तो छोड़िए, रेणु या अमरकांत, भीष्म साहनी की परंपरा से भी बहुत अलग है। यह अज्ञेय की परंपरा की भी नहीं है, लेकिन 'गद्य में इस तरह की भाषा समकालीन पीढ़ी के कई युवा या अधेड़ हो रहे लेखकों में मिलती है।"[10] कुछ विद्वान इस तरह की भाषा को निरर्थक मानते हैं। उनका मानना है कि इस तरह भाषाओं में सिर्फ व्याकरण की तोड़-मरोड़ है। जैसे जेल द्वारा उगलना और सांस लेना, सवाल द्वारा घात लगाना, आशंका द्वारा हाँफना और नजरों का उग आना। वीर भारत तलवार का मानना है कि "भाषा के ऐसे प्रयोग से गद्य में वैसी ही चमक पैदा होती है जैसे धूप में शीशे को तिरछा करके चमकाने से पैदा होती है। इस चमक से हमें चीजों को साफ़ देखने में सहायता नहीं मिलती, उल्टे इसकी चकाचौंध से आँखें मिचने लगती है"।[11] लेकिन संजीव ने इन शब्दों का प्रयोग स्थितियों को व्यक्त करने के लिए किया है। अत: उन पर ऐसा आरोप लगाना निरर्थक लगता है। संजीव के कथा शिल्प में सौन्दर्य के दर्शन भी मिलते हैं। कहीं-कहीं ये सौंदर्य व्यंग्य में तब्दील हो जाते हैं, जैसे- "नया कानून पास हुआ है, जो औरत जेहल जाएगा ऊ सबको एक-एकठो मरद और बच्चा मिलेगा।"**(पृ.-16)** "बहुत फटर-फटर करता है रे मैनवा के आते ही दिमाग चढ़ गया? अभी कल तक तो तेल लगा रहा था, मामा परमामिंट करवा दो और आज...।" **(पृ.-19)**, है एक पागल, नमूना बाबू हियाँ का।

पारटी करता है। खतरनाक आदमी हमें शा उलटा-पलटा करता रहता है। **(पृ.-20)** हमको गीत मत सिखाओ, हम मोटी बुद्धि के हैं" "तब मोटी ही सुन ले ,महीन खुद समझ में आ जाएगी' **(पृष्ठ.154)** मुहावरों के प्रयोग में संजीव काफी सजग रहे हैं। चूँकि ये मुहावरे लोक में प्रचलित हैं। अत: इनका प्रयोग करना लाजिमी है।

"जहर का काट जहर।"**(पृ.-17)** "जात सुभाउ न छूटे जब टाँग उठाइके मूते।**(पृ.-21)**

"दूध का दूध, पानी का पानी **(पृ.24)**" शाम को छुरी- गोश्त, सुबू फिर दोस्त दोस्त' 'घर की मारी वन में गई ,वन में लगी आग'**(पृ.146-धार)**

संजीव का भाषा पर जबरदस्त अधिकार है, इनके यहाँ नवीन उपमानों का प्रयोग भी दिखाई पड़ता है, जैसे-

"दोनों फाटकों के बीच धूसर उजाले की क्षीण पट्टी दोनों ओर के अंधेरे के बीच माँग सी खिल रही थी- सूनी माँग" (पृ.-14)

छाती कूटती हुई रोए और मुर्गी के तरह ही फुदके जा रही थी **(पृ.-38)** "मक्खियों के झुंड- सी भीड़ जमा हो आई थी।" **(पृ.-40)**" "कबाड़ी धीरे-धीरे खुद कबाड़ में बदलता है। **(पृ.-43)"** "एक हाथ से तेजाब की बारिश से छरछराती देह को खुजलाती और दूसरे हाथ से कोयले की टोकरी थामें ।" (पृ.-48) "अरे आप जा रहे हैं। "पसीने से चिपचिपाई देह पर यार्ड और चाँद की जर्द रोशनी कोढ़ के चकत्तों सी चिलक रही थी"(पृ.-54) "उदास सलोने मुखड़े को निहारकर मामा को बेइन्तहां प्यार आया।"(पृ.-61), मैना सचमुच की मैना हो गई है जो बन्द पिंजरे की सलाखों को चोंच से काटती फड़फड़ा रही"(पृ.-61) "भीगी रतनारी आँखों से असहायता में तिरोहित होते माहौल को एक नजर देखते हुए बोलती गई, (पृ.-61)" "आजकल रमिया से ही-ही-ही-ही करने से फुरसत ही नहीं"**(पृ.-62)**

"छाया एक बार ठमकी फिर जल्दी-जल्दी आगे बढ़ गई।" **(पृ.-62)**

जीत के ज्वार में रमिया ने नाक फुलाकर कहा **(पृ.-64)**, लाल सूरज, लाल पताका, लाल बसुन्धरा **(पृ 162)** "आप लोगो ने अँधेरे की छाती पर रोशनी का पेड़ रोपा है" **(पृ.164),** "चेतन से अवचेतन, जागरण से स्वप्न में लुढ़कती गई वह सावली रात के सलोनेपन में"**(पृ.171),** 'कसमसाते बदन शर्म से सिहर गये! सलोनी गर्दने जरा सी मुड़ी फिर साही की तरह अपने आप में सिमट गई।'**(पृ.198)**

डॉ. वीर भारत तलवार का मानना है कि -"संजीव पात्रों की मुद्राओं का चित्रण करने के लिए जानवरों का सहारा लेते हैं। जैसे -वह कौवे की तरह चारो ओर परख लेता **(पृ.-20)**, चूहे की तरह डरा हुआ **(पृ.-26)** भटके हुए सियार-सा उतर पड़ा **(पृ.-30)**, उदबिलाव की तरह डिब्बे में चला गया **(पृ.-31)** और देह झूमने वाले बैल की तरह हिल रही थी **(पृ.-34)** आदि।[12] "

स्त्री-पुरुष के भाव भंगिमाओं को संजीव ने कई जगह अत्यंत महत्वपूर्ण ढंग से उकेरा है। प्रेम एंव आसक्ति के कई सूक्ष्म चित्र संजीव के यहाँ मिलते हैं। इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. वीर भारत का मानना है कि- "यौन प्रसंगों और स्त्री शरीर को ललचाई हुई नजरों से देखते हुए, आसक्तिपूर्ण ढंग से इसका रंगीन वर्णन करने की प्रवृत्ति कई लेखकों में मिलती है। 'हंस' पत्रिका ने ऐसे लेखकों को छाप-छाप कर इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया जिसका तिरिया-चरित्तर सिर्फ एक उदाहरण है। यह प्रवृत्ति संजीव में कुछ कम है, पर है। "बच्चे को लेते ही उसने आँचल डालकर अपने भरे-भरे स्तन उसके मुँह में लगा दिये (पृ.-11)"[13]

वीर भारत तलवार का मानना है "कि लेखक ने कहां से उसके भरे स्तनों को देख लिया? खदान के अंदर नीचे काम करके थक चुकी मैना की नींद सांप काटने के

स्वप्न के रूप में फोकल द्वारा उसके बलात्कार को खूबसूरत बनाकर पेश किया गया। दृश्य तो लेखक का ही दिवा स्वप्न है। यौन प्रसंग तो नहीं, लेकिन यौन प्रसंगों से जुड़े हुए दो शब्द हैं- गर्भपात और स्खलन। लेखक को इनके प्रयोग का काफी मोह है ,"अर्थ गर्भित चुप्पी खनक कर टूटी, जैसे गर्भपात हुआ हो।" (पृ.-44) गर्भ शब्द आया नही कि उनके पीछे-पीछे चलता हुआ गर्भपात भी पहुँच जाता है- "जिसे गर्भ मानकर वे सपने सँजोते आये थे, वह एक आघात से गर्भपात में बदल गया।"[14]

किन्तु वीर भारत तलवार की बातों से सहमत हो पाना काफी कठिन है, क्योंकि यौन प्रसंग और ललचाई हुई नजरों के देखने की दृष्टि से किसी लेखक को ख़ारिज नहीं किया जा सकता है। इस दृष्टी कोण से देखा जाये तो क्या कहानीकार मंटो, कृष्ण चंदर, धर्मवीर भारती जैसे तमाम कथाकारों को हम ख़ारिज कर सकते है, कभी नहीं, क्योंकि यह तो मानव जीवन का एक पक्ष है।

संजीव के शिल्प की सबसे प्रमुख विशेषता क्षेत्र के अनुरूप भाषा का चयन है। जिस क्षेत्र विशेष में उपन्यास लिखते हैं उस क्षेत्र विशेष की भाषा उनके उपन्यासों में आती है। उनकी भाषा विषयवस्तु के अनुरूप होती है। 'धार' उपन्यास में कोयलांचल की भाषा का समग्र रूप दिखाई देता है। आदिवासियों, मजदूरों की भाषा पूरे उपन्यास पर हावी है। उनके मुहावरें, लोकोक्तियों, किवदंतियों को कथाकार ने चित्रित किया है। संजीव की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है कि सबसे पहले वे कथावस्तु की तलाश करते हैं फिर शोध प्रक्रिया के विविध चरणों के फलस्वरूप उसे साहित्यिक या औपन्यासिक रूपांतरण करते हैं। इस दौरान कथाकार अपनी भाषा का प्रयोग करता है और उस विशेष क्षेत्र, समाज, संस्कृति की भाषा का भी प्रयोग करता है। संजीव के सभी उपन्यास अपने-अपने क्षेत्र की भाषा को समेंटे हुए प्रस्तुत होते हैं, चूँकि भाषा भी

समाज और संस्कृति की ऊपज होती है, अतः उस पर क्षेत्रियता व लोक का गहरा प्रभाव होता है जिससे वह पाठक से संवाद स्थापित करती है। संजीव के यहाँ क्षेत्रीयता इतनी भी दुरूह रूप में नहीं आती कि पाठकों को समझ में न आये। उपन्यास के भावों को व्यक्त करने वाली सारगर्भित भाषा का प्रयोग इनके यहाँ दिखाई देता है, जिनकी समस्या को व्यक्त करते हैं उनकी ही भाषा का प्रयोग करना संजीव की महत्वपूर्ण विशेषता है। कथाकार के ही शब्दों में कहें तो-

"मैंने जिन क्षेत्रों की समस्याओं को उठाया है, अक्सर उन्हीं की भाषा रीति, लोकोक्तियों, मुहावरों, बोलियों आदि का प्रयोग किया है। इसके बावजूद में रे उपन्यासों में भाषा के विविध रूप आपको दिखाई पड़ जायेंगे। हिंदी, संथाली, बंगाली, बिहारी, झारखंडी, अवधी मैंने अपने उपन्यासों में अक्सर मिली-जुली भाषा का ही प्रयोग किया है।"[15]

पात्र और परिवेश के अनुसार भाषा का गठन संजीव के यहाँ मिलता है। नए बिम्बों, नये प्रतीकों और उपमानों का प्रयोग इनके यहाँ मिलते हैं। खोजी प्रकृति, अन्वेषण की प्रवृत्ति होने के कारण संजीव नए-नए बिम्बों को गढ़ने में सफल रहे हैं।

हिंदी साहित्य में औपन्यासिक शिल्प की एक लंबी परंपरा रही है। प्रारंभिक दौर के उपन्यासों में 'चंद्रकांता' का शिल्प अत्यंत आकर्षित करने वाला था। चूँकि इस समय के उपन्यास लोक जीवन से नहीं जुड़ पाए थे, इसलिए इनका शिल्प मनोरंजन और हास्यास्पद से भरा हुआ दिखता है। शुरुआती उपन्यास सुधारवादी, तिलस्मी, ऐयारी जैसे विषयों को महत्व देते थे। कुछ स्त्री समस्या से संबंधित उपन्यास भी नजर आते हैं, लेकिन प्रेमचंद के यहाँ आने पर हमें उपन्यास की मूल संकल्पना दिखाई पड़ती है। पहली बार उपन्यास समाज के मध्यवर्ग, निम्न मध्यवर्ग से अपना

सरोकार स्थापित करता है। उनके दुख दर्द उनकी समस्याओं और आकांक्षाओं से परिचित कराता है। मध्यवर्ग की संपूर्ण चिंताओं का यथार्थ रूप हमें प्रेमचंद के यहाँ मिलता है। प्रेमचंद के यहाँ से औपन्यासिक शिल्प बदल जाता है। प्रेमचंद का मानना था कि सिर्फ मनोरंजन करना ही साहित्य का उद्देश्य नहीं होता है। यहाँ हम सघन और सधा हुआ शिल्प पाते हैं। जीवट भाषा का प्रयोग प्रेमचंद के उपन्यासों की महत्वपूर्ण विशेषता है। अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी' में मनोवैज्ञानिक शिल्प नजर आते हैं, तो रेणु के शिल्प में अंचल बोलता है। इसके बाद विनोद कुमार शुक्ल के यहाँ शिल्प का एक नया रूप दिखाई पड़ता है। हिंदी उपन्यास में पहली बार विनोद कुमार शुक्ल ने अपने उपन्यास की शुरुआत कविता से करते है। प्रियंवद के उपन्यासों में भी काव्यात्मक भाषा का प्रयोग दिखाई देता है। उदय प्रकाश के यहाँ फैंटेसी का शिल्प दिखाई देता है। ऐसा माना जाता है कि उन पर पाश्चात्य विद्वान मार्खेज का प्रभाव था। जादुई यथार्थवाद उनके शिल्प में निहित था, इसके बाद काशी का अस्सी में औघड़ शिल्प दिखाई देता है, क्योंकि भाषा की मर्यादा और भाषा की नैतिकता व शुद्धिकरण से उनका कोई संबंध नहीं है। यह उपन्यास की मांग भी थी। यदि ऐसा नहीं करते तो वे एक विशेष समाज व संस्कृति का चित्रण भी नहीं कर पाते। शिल्प में यह एक नये तरीके का परिवर्तन है।

संजीव पंरपरा और आधुनिकता के बीच संक्रमणकाल के एक ऐसे रचनाकार हैं जिनके यहाँ वह औघड़पन आज भी नहीं है। इनके यहाँ एक सधा हुआ शिल्प है, जो अपनी परंपरा से ग्रहण करते है। एक तरफ वे 'जंगल जहां शुरू होता है' 'सावधान नीचे आग है' 'धार', 'पाँव तले की दूब' जैसे उपन्यास लिखते हैं तो दूसरी तरफ 'रह गई दिशाए इसी पार' जैसा वैज्ञानिक उपन्यास भी लिखते हैं, इस उपन्यास में एक

खास तरह का शिल्प है जिसके बिम्ब और शिल्प तथा मुहावरे भी विज्ञान को केन्द्र में रखकर गढ़े गए हैं। संजीव का शिल्प कथानक की जरूरत के हिसाब से रचा गया है।

संजीव का शिल्प परंपरा और आधुनिकता दोनों में अपने अधिकार जमाए हुए है। 'पाँव तले की दूब' अपने नए औपन्यासिक ढांचे, शिल्प विधान एवं भाषा के टेकनीक की दृष्टिकोण से संजीव का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। उपन्यास का प्रारंभ नए काल्पनिक चित्र सा महसूस कराता है- जैसे

"दूर होती ट्रेन की लय के साथ आखिरी बोगी के पीछे जड़ा सुर्ख अंगारा भी मद्धम पड़ते-पड़ते बुझ गया तो मैंने अपने आपको उस निपट उजाड़ स्टेशन पर अकेला पाया।(पृ.-7)" एक विशेष स्थिति का निर्माण करने के लिए नए-नए शब्दों को कथाकार ने गढ़ा है- "यहाँ कभी-कभी भटकने वाले एक पागल के सिवा कोई किसी 'बिजली साहब' को नहीं जानता, न हीं किसी सुदीप्त या सुदामा प्रसाद को।[16] "मगर वास्तविक 'पंच पहाड़' हाल्ट के पश्चिम की ओर पाँच पहाड़ों से घिरा हुआ, एक दैत्याकार काले गुब्बारे सा उड़ रहा है। **(पृ.8-पावं तले की दूब)"** इस गुब्बारे में सुराख बनाती हुई वन विभाग की सड़क मुझे अंदर दाखिला दिलाकर लौट चुकी है और जाते-जाते बादलों का किवाड़ भी बंद करती गई है। **(पृ.-8 पावं तले की दूब)**

इस घिरते अंधेरे में जुगनू सा पंख समें टे कहां छुपा है में रा दोस्त? **(पृ.-8)"** नवीन उपमानों प्रतीको को 'पाँव तले की दूब' उपन्यास में कथाकार ने शब्दों में पिरोया है- "देखते ही देखते दस बजे के सूरज को भी बादलों ने ढक लिया, जैसे डाकू, पुलिस या गुण्डे के आने पर माताएं अपने बाहर खेल रहे बच्चों को छुपा लेती हैं।"[17]

"सू-सू स्याह नकाब से सिसकारती हुई यह कैसी आवाज है?"**(पृ.-8)**

भाषा का साहित्य और समाज से अभिन्न संबंध रहा है। भाषा समाज की संवाहिका होती है। भाषा के बिना न तो किसी समाज की कल्पना की जा सकती है और न ही साहित्य की। किसी समुदाय की भाषा और उसके साहित्य को समझे बिना हम उसकी अभिव्यक्ति भी नहीं कर सकते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा का मानना है कि- "भाषा भावों की संवाहिका होती है, इसलिए जिन भावों का स्पष्टीकरण भाषा को करना है उनका स्पष्ट और प्रभावशाली प्रयोग भाषा पर ही आधारित है।[18] संजीव ने अपने उपन्यास 'धार' और 'पाँव तले की दूब' में एक ऐसी ही गतिशील भाषा का प्रयोग किया है। उसमें आंचलिकता के साथ- साथ खड़ी बोली है, और देशज शब्दों का भी प्रयोग हैं। संपूर्ण रूप से कहा जाए तो संजीव की भाषा एक मिली -जुली भाषा है। यही कारण है कि उनके पात्र भी मिली-जुली भाषा का प्रयोग करते हैं। किसी एक भाषा का नहीं। लेकिन हां इतना जरूर है कि पात्रों के संवाद से उनकी भाषा नए-नए बिम्बों को सामने लाती है। संजीव के उपमान भी बेजोड़ हैं। अपने उपन्यासों में संजीव जिस अंचल की बात करते हैं, उन अंचलों की भाषा का प्रयोग अधिक रहता है, लेकिन उससे पढ़ने की गतिशीलता कम नहीं होती उनकी भाषा में प्रवाहमयता का गुण भी विद्यमान है।

अंग्रेजी भाषा का प्रयोग- संजीव के उपन्यास में अंग्रेजी भाषा के शब्द भी मिलते हैं। आदिवासी इलाकों में कोयला उद्योग से लेकर तमाम तरह की फैक्टरियां स्थापित है। अत: उनमें अंग्रेजी बोलने वाले तमाम कर्मचारी भी होते हैं। जैसे- मैं समीर हूँ 'नजर' पत्रिका का करेस्पॉन्डेन्ट।(पृ.-12पाँव तले की दूब)

यू नो झारखण्ड खनिज संपदा का भंडार है।(पृ.-17)

एन.टी.पी.सी. के लिए सरकार आदिवासियों की जमीन अधिग्रहण कर रही है।(पृ.17) उन्हें टोटली डिप्राइव किया जा रहा है-(पृ.-17)

'इट्स मिरेकल' (पृ.-15) 'वेल हू इज मिस्टर अविनाश शर्मा "माइसेल्फ़ एंड ह्वेयर इज मिस्टर पंडा"(154 -धार)

लोकगीतों का प्रयोग-

भाषा का एक गुण जहां अत्यंत कठोर होता है, वहीं दूसरा रूप अत्यंत लचीला भी होता है। संजीव के उपन्यास 'धार' व 'पाँव तले की दूब' क्रमश; बंगाल के संथाल परगना का सहारजोड़ी व झारखंड के छोटा नागपुर का डोकरी अंचल है दोनों ही उपन्यास सत्य घटना पर आधारित आदिवासियों के शोषण और त्रासद पूर्ण जीवन पर आधारित है। कथाकार उनके जीवन के विविध रंगों को अपने कथा संसार में प्रमुख स्थान देता है। जिनमें गीतों का प्रमुख स्थान है, आदिवासियों के लोकगीत जीवन के सुख-दुख, मान-अपमान, प्रेम विवाह, मृत्यु, रोजगार छिन जाने, प्रेमिका पर रीझ जानें, राधा-कृष्ण प्रेम आदि जैसे विषयों पर आधारित होते है उनके गीतों में मधुरता है हृदय को झंकृत कर देते हैं। वृक्षारोपण के साथ ही संथाल गीत शुरू होता है-

"नोड़ाक केदा लाड़ दुआर केदा, बांद केदा लाड. पुखुर केदा

रोहोयालड. सरी नुथे से ताले दारे, गुंजक गुरूक रे अतुय तोदन।[19]

(हमने घर बनाया द्वार बनाया बाँध बाँधे और पोखरे खोदे। प्यारे चलो अब हम आम और ताड़ के पेड़ लगाएं क्योंकि मृत्यु के बाद यही हमारी यादगार रह जाएंगे।) क्रांति का जन गीत भी संथालों के यहाँ दिखाई देता है- यह जागरण का गीत नृत्य भी है-

“दे वाहा विरिट पे-ए लगन लगन विरिट पे-ए, जापित रे दो आदो बोया वन वन ताहे ना

लुदनिदा पारो से ना मासली रेटा सेटेर ना, नाउवा बेड़ा हिड़ी-झिरी कुवरे राका बेन माझरा-माझरा रामकाताते आदो वनवन भूलो या, बुलकाते आदो वोया वन वन ताहे ना।”

(सभी लोग जागो, उठ खड़े हो, जल्दी उठ खड़े हो। अब हम सोए नहीं रहेंगे। रात बांटने को आई है।[20]

संदर्भ ग्रन्थ 5

1- दुरुगकर डॉ. सुभाष, राही मासूम रज़ा का कथा साहित्य-, पृष्ठ सं.183

2- वही ,पृष्ठ सं.183

3- वही, पृष्ठ सं. 185

4- तलवार वीर भारत, झारखण्ड के आदिवासियों के बीच एक एक्टिविस्ट के नोट्स, पृष्ठ सं. 445

5- वही ,पृष्ठ सं. 445

6- धार, पृष्ठ सं. 16

7- वही,पृष्ठ सं. 12

8- वही, पृष्ठ सं. 8

9- वही, पृष्ठ स. 10

10- तलवार वीर भारत, पृष्ठ सं.444

11- -वही

12- वही

13- वही

14- वही

15- संजीव से लिए गए साक्षात्कार पर आधारित देखें 'परिशिष्ट'

16- पाँव तले की दूब, पृष्ठ सं.8

17- वही

18- वर्मा, डॉ. रामकुमार, साहित्यशास्त्र, पृष्ठ सं.116

19- संजीव, धार, पृष्ठ सं.144

20- वही पृष्ठ सं.166

उपसंहार

संजीव के लिए दैवीय शक्तियां महाकाल और महाकाली किसी आस्तिकता के पर्याय नहीं है समय और शक्ति की द्वंद्वात्मकता के प्रतीक हैं। आततायियों के विनाश के बाद सृजन की ओर लौट चलने की अनुप्रेरणा ही उनके लिए जीवन संघर्षों का सार है । प्रतिपल कुछ टूट रहा है, मगर उसी तरह कुछ जुड़ भी रहा है, तो वह क्या और कितना है। अपने समय की प्रतिबद्धता को कथाकार संजीव स्वीकार भी करते हैं कि "मेंरे होने और न होने के बीच यह जो जाले सा झूलता अंतराल है क्या वही, बस उतना ही है, में रा समय ? जीवन के पार जाने की हठीली इच्छा, समय के पार जाने के स्वप्न, संकल्प उनके बीच भी तो बहता है। में रे अस्तित्व बोध का प्रवाह जो मां के गर्भ से भी पीछे, बहुत पीछे, युग युगांतर से संश्लेषित होता आया है और मौत के मुहाने के बाद भी रह जायेगा। किसी न किसी रूप में समय ऊर्जा और पदार्थ की द्वंद्वात्मकता का प्रतिफलन है, यह सृजन चक्र ।" चीजें अच्छी हो या बुरी ये तो समय का तकाजा है लेकिन संजीव इन अच्छाईयों-बुराईयों को परखते हुए अपनी जिज्ञासा को फैलाते हैं। चीजें अच्छी हैं तो क्यों बुरी हैं, तो क्यों कितना कब, इन चीजों को संजीव बड़े ध्यान से परखने वाले कथाकार हैं। संजीव सूक्ष्म से सूक्ष्म जटील से जटील और असंभव से असंभव चीजों में भी सेंध लगाते हैं और अपने समकालीन जटिलताओं को बूझते परखते हैं। वे अपने समाज की स्थिति तथा अपनी दिशा एवं दशा की विसंगतियों को बखूबी पहचानते हैं और तमाम मिथकों भ्रमों को तोड़ते हैं। संजीव का समय दमन और गुलामी की दाढ़ों में कसमसाते और उनसे

निकल पाने की छटपटाहट और बेचैनी से भरा है। संजीव के रचना संसार की शुरुआत 'किस्सा एक बीमा कंपनी की एजेंसी का' के रूप में सारिका अप्रैल 1976 में हुई जिसमें लोभ की बारंबारता में भटकती आत्मा को दिखाया गया है। तब से आज तक जीवन जगत के प्रश्नों से जूझ को विषय वस्तु बनाते संजीव की सृजन प्रक्रिया गतिमान है। लेखक संजीव की रचना दृष्टि बदलते जटिल सामाजिक यथार्थ में सर्वग्रासी शासक वर्ग व शोषित जनता के दुख दर्द तथा संवेदनाओं का, एवं समकालीनता के द्वंद्वात्मक जटिलता को एक रचनाकार की वैज्ञानिक संस्पर्शी चेतना की दृष्टि से विस्तार है। विश्लेष्य उपन्यासों की कथाभूमि कोयलांचलों के संघर्षशील जनजीवन का चित्रण है। 'धार' उपन्यास की कथा भूमि सन 1979 से 1982 के बीच संथाल परगना के देवघर सब-डिवीजन के चित्रा कोयला क्षेत्र के सहारजोड़ी नामक स्थान में हुई घटना पर आधारित है, जिसमें आदिवासियों द्वारा स्थापित जनखदान के निर्माण एवं शासन व खदान माफियाओं के द्वारा इसके बर्बर दमन एवं ध्वंस का चित्रण है। विश्लेष्य दूसरा उपन्यास 'पांव तले की दूब' छोटानागपुर के डोकरी अंचल नामक स्थान में एन.टी.पी.सी. द्वारा आदिवासियों की अधिग्रहीत जमीन एवं उससे पैदा विस्थापन व संघर्ष की गाथा है जिसमें आदिवासी प्रतिरोध और उसमें संलग्न नेतृत्वकारी सामाजिक कार्यकर्ता के संघर्ष, द्वंद्व व चिंताओं का चित्रण है।

उपन्यास 'धार' में संथाल आदिवासियों के प्रकृति पर आधारित जीवन जो मुख्यतया कोयले के खनन एवं उससे प्राप्त आमदनी पर आधारित है, में पूंजी के प्रवेश व तद्जन्य मुनाफा आधारित राज्य व पूंजीपतियों के गठबंधन की त्रासद पूर्ण प्रस्तुति है। उपन्यास में आदिवासी समाज की आंतरिक कूपमंडूकता व आडंबर के रूप में डायन प्रथा का चित्रण है तो बाह्य समस्याओं के रूप में जीविका का छीना जाना

व पूंजीवादी मुनाफा आधरित संस्कृति से पैदा वेश्यावृति जैसी घटनाओं से संघर्ष भी है। आदिवासी संस्कृति पर बाह्य "पूंजीवादी सभ्यता" के प्रभाव स्वरूप, संस्कृति व आर्थिक प्रभावों का मर्म विदारक चित्रण है। उपन्यास 'पांव तले की दूब' आदिवासियों के संसाधनों की लूट, झूठे वायदों, जीविका के छीनने, विकास द्वारा उत्पन्न प्रदूषण की मार झेलने व आदिवासी समाज में संघर्ष के सही दिशा में न बढ़ पाने के व उससे पैदा हुए अवसाद व टूटन का चित्रण है। आदिवासी संघर्ष की गाथा बहुत पुरानी है जो न केवल भारतीय इतिहास में वरन मिथकीय साहित्य में भी देखने को मिलती है। लेकिन आधुनिक आदिवासी संघर्ष की गाथा, औपनिवेशिक भारत में अंग्रेजों द्वारा संसाधनों और श्रम की लूट से शुरू होती है। आदिवासी क्षेत्र में दमन की गाथाएं जितनी निर्मम हैं, प्रतिरोध और संघर्ष की दास्तान भी उतनी ही गौरवपूर्ण है। भारतीय आदिवासी, दलित, श्रमिक समाज के शोषण उत्पीड़न की गाथा स्वतंत्र भारत में भी कमोवेश पूर्ववत ही जारी है। शासकीय वर्गीय चरित्र मुखौटा बदलकर आज भी तांडव कर रहा है। उपन्यास 'धार' हाशिए के आदिवासी समाज के ऊपर हो रहे निर्मम अत्याचार को खोलकर रख देता है। यह शोषणकारी तंत्र के मुखौटे को तार-तार करते हुए उस भारतीय यथार्थ को उजागर करता है जिसमें संघर्षरत आदिवासी स्त्री श्रमिक समाज और दमन के बूटों तले रौंदी जाती आदिवासी अस्मिता का चित्रण है। आदिवासी समाज अशिक्षा व गरीबी से तंग तो है ही साथ ही साथ विकास के नाम पर हो रहे बहुआयामी लूट का दंश भी झेल रहा है। उपन्यास 'पांव तले की दूब' विस्थापित आदिवासी समाज के उत्पीड़न की गाथा है। यह उस पूंजीवादी प्रचार को, जो कहता है कि आदिवासी परिवर्तन और विकास का विरोधी है को बेनकाब करता है। दरअसल आदिवासियों को प्रगति और नौकरी का झांसा देकर उनकी जमीनें छीन ली

जाती हैं। जंगल बचाने के नाम पर उनको एक लकड़ी तक नहीं दी जाती। वहीं औद्योगिक प्रदूषण का वे शिकार होते हैं और उनकी आंखों के सामने की जंगली लकड़ी की तस्करी होती है और वे इसी लूट का प्रतिरोध करते हैं। प्रतिरोध में बगावत व भावना का पक्ष प्रधान होता है और सुचिंतित चेतना अनुपस्थित रहती है। नायक सुदीप्त आदिवासी समाज में गहरे मानवीय मूल्यों को रोपना चाहता है और सृजन की आंतरिक गति को आदिवासी समाज में स्थापित करना चाहता है। उपन्यास आदिवासी जनता के संघर्ष और सत्तापक्ष द्वारा वायदा खिलाफी, सुदीप्त के बाह्य- आंतरिक संघर्ष व सपनों के टूटन व खंडन का व्यापक चित्रण करता है ।

उपन्यास 'धार' की भाषा में दो रूपों का दर्शन होता है। यह संथाली परगना की लोक भाषा व व्यापक हिंदी प्रदेश की समझ की भाषा का मिला जुला रूप है। उपन्यासकार विशिष्ट लोकेल की परिघटना जो कि आधुनिक समय की प्रतिनिधि है को व्यापक हिंदी पट्टी तक फैलाना चाहता है और यही उसके भाषा चयन का आधार है।

उपन्यास 'धार' व 'पांव तले की दूब' वर्तमान भारतीय संदर्भ में आदिवासी समाज के ऊपर हो रहे अन्याय-अत्याचार और संघर्ष की जटिलता को सामाजिक राजनैतिक आर्थिक व सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता है। यह शासन सत्ता के छद्म और प्रवंचना के कारण उजड़ती बिखरती आबादी का संघर्ष है जो अनवरत जारी है और तब तक जारी रहेगा जब तक एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण होता रहेगा।

संदर्भ सूची

आधार-ग्रंथ-

संजीव: धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1990

संजीव: पाँव तले की दूब- वाग्देवी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2009

संदर्भ ग्रंथ-

अनुराग हरिवंश कौसल: झारखंड अस्मिता के आयाम (सं), प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, संस्करण-2009

आचार्य नंद किशोर: संस्कृति की सभ्यता, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, प्रथम संस्करण-2008

बानू जेनाब: राजनीतिक पहचान का संघर्ष एवं अनुसूचित जनजातियां, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, संस्करण-2002

बोस तपन: देशज कौन? आदिवासी कौन? ग्रीन पार्क एक्सटैशन , नई दिल्ली, संस्करण-2008

चन्द्र विपिन: आजादी के बाद भारत, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन, दिल्ली, संस्करण-2002

चौधरी उमाशंकर: हाशिए की वैचारिकी, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, संस्करण-2008

चव्हाण डॉ. अर्जुन: विमर्श के विविध आयाम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2008

दुरुगकर डॉ.सुभाष: राही मासूम रजा का कथा साहित्य, दिव्य डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रकाशक एवं पुस्तक, कानपुर, संस्करण-2008

गुप्ता रमणिका: आदिवासी कौन?, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2008

गुप्ता रमणिका: आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2008

गुप्ता रमणिका: आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण-2008

हसनैन नदीम: जनजातीय भारत, रवि मजूमदार, जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, संस्करण- 2005

जोशी ज्योतिया: उपन्यास की समकालीनता, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2007

कुमार चौहान:आदिवासी स्वर,(सामाजिक आर्थिक जीवन), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2007

मधुरेश: हिन्दी उपन्यास की विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-

मुले डॉ. रेखा:कथाकार चंद्रकांता, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण-2005

मुंडा रामदयाल: आदिवासी अस्तित्व और झारखंडी अस्मिता के सवाल, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, संस्करण- 2009

राय राम जी: समकालीन जनमत(संपादित), पटना, सितंबर- 2003

सागर शैलेन्द्र:कथाक्रम(आदिवासी समाज और साहित्य), लखनऊ, अक्टूबर-नवंबर, 2011

सिंह नामवर: आधुनिक हिंदी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण- 2010

शर्मा डॉ. ब्रह्मदेव: बता में रे याद में री में हनत का मोल क्या है?, सहयोग पुस्तक कुटीर, नई दिल्ली, संस्करण- 2011

शर्मा डॉ. ब्रह्मदेव: टूटे कायदों का अनटूटा इतिहास, भारतीय राज्य और आदिवासी लोग, सहयोग पुस्तक कुटीर, नई दिल्ली, संस्करण- 2011

सिंह विजय बहादुर: उपन्यास समय और संवेदना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2007

तलवार वीर भारत: झारखंड के आदिवासियों के बीच, एक्टीविस्ट के नोट्स, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली- संस्करण-2008

तिवारी डॉ. शिवकुमार: मध्यप्रदेश की जनजातीय संस्कृति, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, संस्करण-2005

त्रिपाठी, प्रो. मधुसुदन: भारत के आदिवासी, आमें गा पब्लिशंस, नई दिल्ली, संस्करण- 2008

यादव वीरेन्द्र: उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2009

<u>पत्रिकाएं-</u>

कल के आंदोलन का सच: रघुनाथ चक बल्लभपुर, वर्द्धमान, पश्चिम बंगाल

नागपुर विष्णु(सं): शुक्रवार(फिल्म विशेषांक), नोएडा, अंक- 52, 27 अप्रैलसे 3 मई 2012

प्रसाद कमला (सं), वसुधा, निराला नगर, भोपाल, 2012

शाह के आर: आदिवासी सत्ता, अंक-10-11, नवंबर-दिसंबर, वर्ष-2012 छत्तीसगढ़

सिंह रामधारी 'दिवाकर' (सं)- परिषद पत्रिका- अप्रैल 1997 से मार्च 1198,अंक-1-4,वर्ष37

शब्द के आर: आदिवासी सत्ता, अंक-10-11 नवम्बर-दिसम्बर, वर्ष-2012, छत्तीसगढ़

वर्मा रामकुमार: हंस (हिंदी सिनेमा के सौ साल), अक्षरा प्रकाशन, नई दिल्ली, अंक फरवरी 2013

यादव कालीचरन(सं):मई (99), अंक-1, वर्ष-1, विलासपुर